कुछ प्रारम्भिक शब्द

भारत-वसुन्धरा प्राचीनतम काल से वीरप्रसू रही है। इसके लिखित इतिहास में और अलिखित इतिहास के गहनतम गह्वर में भी वीरता और आत्मत्याग के ऐसे-ऐसे कारनामों के वृत्त छिपे पड़े हैं जिन्हें पढ़कर या सुनकर चकित होना पड़ता है। रामायण-काल से लेकर महाभारत-काल तक ऐसे ऐसे वीरपुंगव हुए हैं जिनकी वैयक्तिक और सामूहिक वीरता के वृत्तों को पढ़कर किस भारतीय की छाती जातीय गर्व से फूल नहीं उठती! मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम, राजनीति-विशारद श्रीकृष्ण, पितामह भीष्म, गाण्डीवधारी अर्जुन, गदाधारी भीम, अर्जुनकुमार अभिमन्यु और इन-जैसे अनेक और महावीरों के आदर्श जीवनों की घटनाओं को हम अब, हज़ारों सालों में बाद भी, नित पढ़ते है और सुनते हैं। उनकी स्मृतियां अब भी वैसी की वैसी हमारे हृदय-पटलों पर अंकित हैं। इसका कारण यह है कि उन लोगों की वीरता के आख्यानों को कविता का अमर रूप देने के लिए सौभाग्यवश उन्हें वाल्मीकि और व्यास-जैसे महाकालाविद् कवि मिल गये थे। इसीलिए उनकी यशोदुन्दुभि अब भी बज रही है।

इसके पश्चात् भारतीय इतिहास के मध्यकाल में भी विक्रम, चन्द्रगुप्त और अशोक आदि महावीर हुए, परन्तु उनकी वीरता के इतिवृत्त उनके अपने समय के बहुत बाहिर नहीं पहुँच सके, क्योंकि उन्हें कोई वाल्मीकि अथवा व्यास नहीं मिले और यदि मिले भी होंगे तो उनके रचे हुए ग्रन्थ आक्रमणकारी विदेशियों के आघातों से नष्ट-भ्रष्ट होकर कालगर्भ में ही विलीन हो गये होंगे। यह ऐतिहासिक काल अब तक कालकवलित ही समझा जाता है हाँ, जब से भूगर्भ के नीचे से उस समय के वैभव के कुछ खंड-

प्रकाशक—

ओरिएण्टल बुक डिपो,
दिल्ली।

—मुद्रक—

कौरोनेशन प्रिंटिंग वर्क्स फतेहपुरी देहली।

कुछ प्रारम्भिक शब्द

भारत-वसुन्धरा प्राचीनतम काल से वीरप्रसू रही है। इसके लिखित इतिहास में और अलिखित इतिहास के गहनतम गह्वर में भी वीरता और आत्मत्याग के ऐसे-ऐसे कारनामों के वृत्त छिपे पड़े हैं जिन्हें पढ़कर या सुनकर चकित होना पड़ता है। रामायण-काल से लेकर महाभारत-काल तक ऐसे ऐसे वीरपुंगव हुए हैं जिनकी वैयक्तिक और सामूहिक वीरता के वृत्तों को पढ़कर किस भारतीय की छाती जातीय गर्व से फूल नहीं उठती! मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम, राजनीति-विशारद श्रीकृष्ण, पितामह भीष्म, गाण्डीवधारी अर्जुन, गदाधारी भीम, अर्जुनकुमार अभिमन्यु और इन-जैसे अनेक और महावीरों के आदर्श जीवनों की घटनाओं को हम अब, हज़ारों सालों में बाद भी, नित पढ़ते हैं और सुनते हैं। उनकी स्मृतियां अब भी वैसी की वैसी हमारे हृदय-पटलों पर अंकित हैं। इसका कारण यह है कि उन लोगों की वीरता के आख्यानों को कविता का अमर रूप देने के लिए सौभाग्यवश उन्हें वाल्मीकि और व्यास-जैसे महाकालाविद कवि मिल गये थे। इसीलिए उनकी यशोदुन्दुभि अब भी बज रही है।

इसके पश्चात् भारतीय इतिहास के मध्यकाल में भी विक्रम, चन्द्रगुप्त और अशोक आदि महावीर हुए, परन्तु उनकी वीरता के इतिवृत्त उनके अपने समय के बहुत बाहिर नहीं पहुँच सके, क्योंकि उन्हें कोई वाल्मीकि अथवा व्यास नहीं मिले और यदि मिले भी होंगे तो उनके रचे हुए ग्रन्थ आक्रमणकारी विदेशियों के आघातों से नष्ट-भ्रष्ट होकर कालगर्भ में ही विलीन हो गये होंगे। यह ऐतिहासिक काल अब तक कालकवलित ही समझा जाता है हाँ, जब से भूगर्भ के नीचे से उस समय के वैभव के कुछ खंड-

हर, शिलालेख, मुद्रायें, प्रतिमायें और कुछ अन्य वस्तुएं मिल रही हैं, तब से उस समय पर प्रकाश की कुछ रश्मियां यद्यपि धीमी-धीमी, पड़ने लगी हैं !

उस समय के बहुत देर बाद राजपूत-वीरता का समय आता है। उस समय राजपूतों ने वीरता के जैसे अपूर्व कार्य किये हैं उनसे तो यही प्रतीत होता है कि उनमें कोई दैवी शक्ति काम कर रही थी। राजपूत यह नाम ही 'वीरता' का प्रतिशब्द समझा जाना चाहिए। प्राणों का उन्हें मोह न था, जान की उन्हें परवाह न थी, आन और मान की रक्षा के लिए वे आग में कूद जाते थे, तलवारों पर खेलने लगते थे, और सिरधड़ की बाज़ी लगाकर मरने-मारने के लिए रणभूमि में उतर आते थे। अनेकों ऐसे उदाहरण मिलेंगे कि नवोढा वधू का डोला लेकर, गृहाङ्गण में प्रवेश करते ही रण का निमन्त्रण पहुँचा और वरवेष को तुरन्त बदलकर वीरवेष धारण कर लिया और सुहागरात की चिरसंचित आशा को हृदय में दबाये बैठी रमणी का मुख तक न देखे रण-यात्रा को चल पड़े। पुरुषों की ही यह दशा न थी, राजपूत-नारियां भी इस बात में किसी से कम न थीं। नौ मास तक कोख में संभाले हुए जिस पुत्र के भविष्य की आशाओं पर वे सुन्दर जीवन-मन्दिर का निर्माण कर रही हों, उसी को यौवन में पदार्पण करते ही, स्वयं भालतिलक लगाकर वे रणाङ्गण में भेजते ज़रा भी हिचकिचाती न थीं। बहनें भाइयों के हाथों में तलवार देते मंगल-गीत गाती थीं, पत्नियां प्रिय पतियों की कमर में कटार लटका कर उनके गलों में जयमालायें पहनाती थीं और विषम दशाओं में स्वयं भी रण में उनको सहयोग देती थीं। इन राजपूतों के सामने न ऐहिक सुख था और न सांसारिक वैभव। मातृ-भूमि की रक्षा

करते उसकी गोद में प्राण देना उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य और ईश्वरप्राप्ति का साधन था।

परन्तु खेद है कि राजपूतों में वैयक्तिक वीरता की ही प्रधानता रही है। यदि सामूहिक बल को उत्पन्न करने और उसे अक्षुण्ण रखने की इनमें दूरदर्शिता होती तो भारत भूमि पर विदेशियों के पाँव जम ही न पाते। यह उनकी अदूरदर्शिता थी, न कि कोई और संकुचित भाव। वैयक्तिक शूरता के निदर्शन में जो चमत्कार इन्होंने दिखाये हैं उनकी गाथायें किसी इतिहास के पन्नों में नहीं मिलतीं, केवल मौखिक कहानियों की या चारणों के गीतों की परम्परा से हमें कुछ पहुँच पाई हैं। हां, श्रीटाड आदि कुछ ऐतिहासिक खोजियों की कृपा से इनके सम्बध में कुछ-कुछ बातों का पता लगा है। यदि वे लोग भी कुछ न लिखने तो इस वीरता के सुवर्णयुग के दृश्य से हम बिलकुल ही वंचित रह जाते।

राजपूती वीरता का प्रधान केन्द्र मेवाड़ रहा है। इसकी रक्षा में हज़ारों वीरों की देहें बलिदान हो चुकी हैं। इसका चप्पा-चप्पा भूखण्ड, इसकी एक-एक रक्तरञ्जित ईंट अपना-अपना इतिहास स्वयं बता रही है।

जैसे ऊपर बताया गया है टाड साहिब ने 'राजस्थान का इतिहास' में राजपूत-वीरता की बहुत बड़ी प्रशंसा की है। इन्होंने एक जगह आठ-दस पंक्तियों में ही केवल एक ऐसी घटना का वर्णन किया है जिसकी सत्ता सांसारिक इतिहास में अद्वितीय है। जिसे पढ़कर निस्तब्ध होना पड़ता है।

जिस समय बादशाह जहांगीर ने अमरसिंह के विरुद्ध रण-दुन्दुभि बजाई थी, उस समय अमरसिंह के सम्मुख यह समस्या

उत्पन्न हुई कि राजपूत सेना का हिरौल (प्रमुख पद) किसे दिया जाय, चूड़ावतों को या शक्तावतों को। दोनों उसे पानेको लालायित थे। चूड़ावतों के वह अधिकार में था परन्तु शक्तावतों दा दावा था वे ही इसे सदा क्यों भोगते रहें। शक्तावत किसी वात में उनसे कम नहीं हैं !

अंत में सर्वसम्मति से निश्चय हुआ मि जो भी पक्ष, शक्तावत अथवा चूड़ावत, अन्तल्ला दुर्ग को विजित कर उसमें प्रथम प्रवेश करेगा वही हिरौल का अधिकारी होगा। दोनों दल इस निर्णय को सुनते ही उछल पड़े। कौन राजपूत शूरता-प्रदर्शन के अवसर को हाथ से निकलने देता है !

अन्तल्ला वहुत दृढ़ और सुरक्षित दुर्ग था। उस पर मुसलमान शासकों का अधिकार था। वस, चल पड़े दोनों दल उसे विजित करने। परन्तु भीमकाय दुर्ग की चारों ओर की ऊँची और दृढ़ दीवारें और लोहे के नुकीले कीलों से मढ़ा हुआ एक ही वन्द द्वार उसके अन्दर घुसने में वाधाएं थीं। इसके वाद किस तरह दोनों दलों ने दुर्ग के अन्दर प्रवेश करने का उद्योग किया और किस तरह वे घुसे—इसके विषय में सभी कुछ नाटक के इन दृश्यों में वर्णित है। इन दृश्यों के नायक शक्तावत नेता वल्लजी ने जिस वीरता का आदर्श संसार के सामने रखा है, यह अनुपम है। जब हाथी के माथे में द्वार में गढ़े हुए कीलों के चुभ जाने के कारण, उसके आघातों से दुर्गद्वार न खुल सका तो यह वीर इस भय से कि चूड़ावतों का प्रवेश पहले न हो जाय द्वार से सटकर खड़ा हो गया। परिणाम यह हुआ कि हाथी की टक्कर से द्वार तो खुल गया परन्तु नुकीले कील उनकी देह में धँस गए। रोम रोम से रुधिर-प्रवाह वह निकला। अंत में उन्होंने वीरगति पाई।

रण में अनेकों वीर खेत आते रहे हैं, किन्तु उनके सामने जहां मरने का भय होता है, वहां मारने की आशा भी होती है। इसीआशा को लिये वे रणांगण में कूदते हैं। परन्तु कौन मनुष्य सामने खड़ी अवश्यंभावी भयंकर मृत्यु का इस प्रकार जान-बूझ कर सहर्ष आलिंगन करता है! वल्लजी ही ऐसे थे जिन्होंने यह किया। उनकी वह हिम्मत और वलिदान हमारे नवयुवकों के जीवन का आदर्श होना चाहिये। जिस देश और जाति को इस प्रकार के रत्न अलंकृत करते हैं, उसका नाम संसार भर में अमर रहता है।

वल्लजी का अन्तल्ला द्वार पर वलिदान, सालुम्बा सरदार का दुर्ग की दीवारों पर प्राणदान, चन्दा ठाकुर का उनकी मृत देह को गठरी में बाँध और पीठ पर लादकर लड़ते रहना, उस समय के दुर्ग के अधिकारी मुगलों का आमोद-प्रमोद में पड़े होकर शतरंज के खेल में व्यस्त रहना आदि नाटक की प्रमुख घटनायें ऐतिहासिक हैं। शेष काल्पनिक हैं। ये काल्पनिक घटनायें भी उस समय की वीर नारियों की वीरता का निदर्शन हैं।

वल्लजी के जीवन की इस वीरोचित घटना को इन दृश्यों द्वारा पाठकों के सम्मुख रखते मुझे अपार हर्ष हो रहा है। इससे यदि उनकी कुछ भी सन्तुष्टि हुई हो तो मैं इस प्रयास को सफल समझूंगा।

२-६-१९४६,

सन्त गोकलचन्द्र

पात्र सूची

पुरुष पात्र

राणा अमरसिंह—मेवाड़ के राणा।
सालुम्ब्रा सरदार—चूड़ावत दल का नेता।
वंदा ठाकुर—चूड़ावत दल का सरदार।
वल्लजी—शक्तावत दल का नेता।

योधजी
भणजी
अचलेश
—वल्लजी के भाई और शक्तावत सरदार।

रामसिंह—चूड़ावत दल का एक सरदार।
वीरसिंह—शक्तावत दल का एक सैनिक।
अरिसिंह—वल्लजी का गजरक्षक।

दिलेरखाँ
बहादुरखाँ
मुगल सेनापति
—अन्तला के सरदार।

इनके अतिरिक्त कई अन्य—राजपूत सरदार और सैनिक और मुगल सरदार और सैनिक।

स्त्री-पात्र

दुर्गा—वल्लजी की भावी वधू।
गौरी—सरदार रामसिंह की स्त्री।

पहला अङ्क

पहला दृश्य

(स्थान—उदयपुर, मेवाड़), राजदरबार का एक विशाल कमरा। कमरे के मध्य में कुछ ऊँचाई पर एक सुन्दर सुवर्ण-सिंहासन है। उस पर राणा अमरसिंह विराजमान हैं। सिंहासन के ठीक ऊपर तिलई काम का एक चंदोवा टंगा है। आस पास दो सेवक, सुन्दर वेषभूषा से सुसज्जित चँवर झुला रहे हैं। फर्श पर दो चोवदार सुवर्णनिर्मित चोवें लिए खड़े हैं। सिंहासन के दोनों ओर फर्श पर सुन्दर चौकियां धरी हैं। उन पर राजमन्त्री, सालुम्बा सरदार, चल्लजी, योध और कई अन्य उच्च सरदार आदि यथा-पद बैठे हैं।)

एक सरदार—अन्नदाता, आपको स्मरण ही होगा कि इसी मास में आपका अभिषेक हुआ था।

दूसरा सरदार—निस्सन्देह, यही मुकुट तब आपके भाल पर सुशोभित किया गया था।

चल्लजी—ठीक कहते हैं आप। यह वही मुकुट है, जो मेवाड़केसरी स्वनामधन्य महाराणा प्रतापसिंह के मस्तक पर भी सुशोभित रहा है। वे ही बहुमूल्य हीरे और मणिमाणिक्य इसमें सब वैसे-के-वैसे ही लगे हैं, परन्तु जो सामने का स्थान कभी पहले एक बहुमूल्य हीरक से सुशोभित था, वह वैसा-का-वैसा ही अब भी ख़ाली पड़ा है जैसा महाराणा जी की मृत्यु के समय ख़ाली था।

सरदार देवलसिंह—वल्लजी, मुझे तो मुकुट में कोई स्थान ख़ाली नज़र नहीं आ रहा। आप कह क्या रहे हैं?

चल्लजी—आपको नज़र न आयेगा देवलसिंहजी, पर मेरी आँखों से देखो। उन आँखों से जो मृत्युशय्या पर छटपटाते हुए स्वर्गीय महाराणा के अंतिम वाक्य को सुनकर सजल हो उठी थीं। महाराज, आपको स्मरण है उस समय महाराणा के चरणों की शपथ लेकर क्या प्रण किया था मेवाड़ के भावी राणा ने? उस प्रण को स्मरण कीजिये महाराणा जी! आपके मुकुट की कुछ भी शोभा नहीं है जब तक आपकी वह प्रतिज्ञा पूर्ण न होगी, जब तक चित्तौड़ हीरक आपके भालमुकुट में अपना स्थान नहीं कर लेगा।

(दरबार में सन्नाटा छा जाता है। सब एक दूसरे के मुँह की ओर देखने लगते हैं) महाराज, छोड़िये ऐश्वर्य-भोग और आमोद-प्रमोद को और एक बार अपने स्वर्गीय पिता के समान रणदुन्दुभि बजाते हुए रणांगण में उतरिये। मुझे निश्चय है कि स्वर्ग में भी महाराणा उत्सुकता से उस

दिन की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। परिचय दीजिये महाराज, कि आपकी धमनियों में महाराणा का रक्त जोश से उछल रहा है; आप भी उनकी तरह चित्तौड़ की स्वतन्त्रता के लिये छटपटा रहे हैं।

अमरसिंह—वल्ल भैया, तुम जो कुछ कह रहे हो यथार्थ है, और रणभेरी की आवाज़ सुनने को मैं भी लालायित हूँ, पर उसका समय भी तो आना चाहिये !

सालुम्बा सरदार—महाराज, आप कह क्या रहे हैं ? क्या महाराणा कभी समय की प्रतीक्षा करते थे ? क्या मृगराज केसरी को भी कहीं मृगया के लिये समय पूछना पड़ता है ? क्या विद्युत् को कभी गर्जन से समस्त भूमण्डल को ध्वनित करने के लिए समय की प्रतीक्षा करनी पड़ती है ? किसने देखा या सुना है कि गगनचुम्बी महीरुहों को धराशायी करने वाले झंझानिल के लिए कोई विशेष समय नियत है ? भूकम्प से पूछो, वह कब मुहूर्त पूछ कर आया है ? समय का ढोंग राणा जी, मन की भीरुता को छुपाने का एक आवरण है। सच तो यह है कि समय वीरों का दास होता है, वीर समय के दास नहीं होते।

(दौवारिक आता है)

दौवारिक—(सविनय अभिवादन कर) महाराज, द्वार पर दो राजपूत प्रवेश चाहते हैं। उनमें से एक अपना नाम 'चित्तौड़ के सागरसिंह बताते हैं।

राणा—सागरसिंह और चित्तौड़ के ! कहीं काका जी तो नहीं हैं

एक दरबारी—वे कहां आये होंगे !

सालुम्ब्रा सरदार—उन्हें यहां क्या काम ! (व्यंग्य से) क्य
 बादशाह जहांगीर की छत्रछाया से इतने शीघ्र ऊब गये हैं

राणा—(द्वारपाल से) उन्हें ले आओ ।

(द्वारपाल जाता है)

राणा—यदि ये काका जी ही हों तो इनके यहां आने का क्या आशय हो सकता है ?

देवलसिंह—मुझे तो प्रतीत होता है कि बादशाह जहांगीर से कुछ मनमुटाव हो गया होगा ।

(द्वारपाल दो राजपूतों के साथ प्रवेश करता है । उनमें एक कुछ बड़ी उम्र का उच्चकुलीन प्रतीत होता है और दूसरा अधेड़ उम्र का उसका सहचर । दोनों राणा अमरसिंह को अभिवादन करते हैं ।)

अमरसिंह—(देखते ही, आश्चर्य से कुछ उठकर) जुहार काका जी, बैठिये (दोनों संकेतित आसनों पर बैठ जाते हैं । सब दरबारी चकित होकर एक दूसरे का मुँह ताकने लगते हैं ।) काकाजी, आपके आकस्मिक आगमन ने मुझे आश्चर्य में डाल दिया है । पहले कुछ सूचना तो दी होती ? कहिए इस कष्ट का कारण ?

[illegible]—(व्यंग्य से) क्या धन-धान्य-सम्पन्न चित्तौड़ के स्वतन्त्र वातावरण में कुछ कष्ट प्रतीत होने लगा है राणा जी को

जो हमारे निर्धन और दीन मेवाड़ को कृतार्थ किया है ?

देवलसिंह—अपने स्वामी सम्राट जहाँगीर से कुछ अनवन हो गई होगी। इसीलिए अपने पैत्रिक स्थान की याद आई है।

चल्लजी—काका जी, महावत खाँ को भी साथ लेते आते ! उस वेचारे को अकेला क्यों छोड़ आये हैं ? (सब हँसते हैं)

राणा—वल्ल भैया, काका जी हमारे पूज्य हैं।

चल्लजी—इसी कारण तो क्रोधानल की धधकती ज्वाला को हृदय में ही दवाये वैठा हूँ।

दूसरा सरदार—महावत खाँ को वहां क्या कष्ट होता होगा, सम्राट के जातीयों में से जो हुआ।

तीसरा सरदार—यह वात नहीं, स्वर्गीय महाराणा की प्रेतात्मा की धिक्कारें इन्हें नींद न लेने देती होंगी।

सागरसिंह—उनकी प्रेतामात्मा की धिक्कारें नहीं, अपनी अन्तरात्मा की धिक्कारें मुझे नींद नहीं लेने देती थीं।

साम्लुवा सरदार—(कुछ क्रोध से) फिर उस कलुपित आत्मा की शुद्धि के लिये क्या यहां पर गंगा वह रही है ?

राणा अमरसिंह—चूड़ावत जी, काका जी हमारे अतिथि हैं ? अतिथिधर्म का उल्लंघन न कीजिये।

सागरसिंह—इन्हें धिक्कारने दीजिये मुझे महाराज, मैं इसके ही योग्य हूँ। इन धिक्कारों से मेरी आत्मा को शान्ति मिलती है। (आँखों से आंसू निकल आते हैं)

राणा—वात क्या है काकाजी ? मालूम होता है आपने.....

चित्त को कोई बड़ा आघात लगा है।

(सागरसिंह कुछ कहने को उद्यत होता है, परन्तु अश्रुओं से अवरुद्ध कण्ठ के कारण कुछ बोल नहीं सकता।)

दूसरा राजपूत—महाराज, इस दशा में राणा जी कुछ न कह सकेंगे। मैं ही श्रीचरणों में कुछ निवेदन करूं ?

राणा—हाँ हाँ ! आप ही कहिये।

दूसरा राजपूत—महाराज, बादशाह अकबर की मृत्यु के बाद उसके बेटे जहांगीर ने राणा सागरसिंह को चित्तौड़ के सिंहासन पर अभिषिक्त किया था। इसका आशय यह था कि इससे राजपूत प्रजा सन्तुष्ट हो जायेगी और मेवाड़ का बल भी क्षीण हो जायेगा। परन्तु हुआ वैसो नहीं।

एक सरदार—सब राजपूत राणा सागरसिंह नहीं हैं।

दूसरा राजपूत—परिणाम बिल्कुल विपरीत हुआ। जनता उनसे घृणा करने लगी। कोई भी चित्तौड़निवासी उन्हें मिलने तक न आता।

एक सरदार—यही तो राजपूती शान है।

दूसरा राजपूत—इससे राणाजी को सदा मानसिक कष्ट रहता। इधर राजपूत जनता का यह रुख था, उधर बादशाह की भी उन पर सन्दिग्ध दृष्टि रहती। स्वतन्त्रता से वञ्चित कर उन्हें वे कठपुतली बनाये रखने का यत्न करते रहते।

दूसरा सरदार—इसीलिये तो परतन्त्रता को जघन्य माना गया है।

इसमें न मानसिक सुख है और न शारीरिक ही।

दूसरा राजपूत—ऐसी परिस्थिति में राणा जी की दशा विक्षिप्तों की सी हो गई। चित्तौड़ के पूर्वाधिकारी पूर्वजों की याद जब उन्हें आती तो आठ आठ आँसू रोने लगते। दिन को उदासी रहती, रात को नींद न आती। कई बार रात को महल की छत पर बैठे चित्तौड़ के गौरवस्तम्भों को देखकर रोते रोते सारी की सारी रात वहीं गुज़ार देते।

सागरसिंह—महाराज, इसके आगे मैं स्वयं सुनाता हूँ। अब मेरी दशा कहने के योग्य हो गई है। रात को मैं जिधर ही आँख उठाकर देखता, उधर ही मेरे पूर्वजों बप्पारावल, राणा संग्रामसिंह और स्वर्गीय महाराणा प्रताप की क्रोध-युक्त लाल-लाल आँखें मुझे दिखाई देतीं। मैं उसी दम घबरा कर आँखें बंदकर लेता। एक दिन की घटना है। मैं रात को सोया पड़ा था। अकस्मात् एक भीषण नाद हुआ। मैंने देखा सामने भैरव की भयावह मूर्ति एक हाथ में खाँडा और दूसरे में रुधिराक्त मनुष्यमुंड को पकड़े मेरे सामने खड़ी है। मुझे सम्बोधन कर उसने कहा—'दुष्ट राजपूताधम, यहां से चला जा।' उसी समय मेरी आँख खुल गई। अर्धरात्रि का समय था। शेष आधी रात मैंने कैसे मानसिक कष्ट में गुज़ारी, यह मैं ही जानता हूँ। प्रातः होते ही मैं अपने विश्वासी इस मित्र

को साथ लेकर यहां पहुँचा हूं। महाराज, जिस मानसिक कष्ट के साथ मैंने चित्तौड़ाधिपत्य के सात वर्ष व्यतीत किये हैं, उनका मैं क्या वर्णन करूं। (एक कपड़े में से राजमुकुट और चावियों के गुच्छे को निकाल कर) यह है चित्तौड़ का राजमुकुट। इसे मैं आपके ही सुपुर्द करता हूँ। स्वतन्त्र चित्तौड़ के स्वतन्त्र शासक के माथे पर ही यह सुहाता है। (राजमुकुट सिंहासन पर रख देता है।) और यह हैं चित्तौड़गढ़ की चावियां (चावियों को राणा के हाथ में देता है)। ये मेरे पास आपकी धरोहर रही हैं। जिनकी ये हैं उन्हीं को समर्पण कर आज मैं अपने आप को कृतार्थ मानता हूँ। आज से चित्तौड़ के गौरव के आप ही रक्षक हैं। मुझे संतोष है कि इस जीवन के कुकर्मों का कुछ प्रायश्चित आज मैंने किया है।

(जाने लगता है)

राणा—काकाजी, कहां जा रहे हैं आप? आज से आप यहीं रहें। यह आपका ही घर है।

मालसिंह—मेरा अब यहां कोई काम नहीं। मुझे अपने जीवन से ही घृणा हो गई है। महाराज, मैं अब कन्धार जा रहा हूं, अनुमति दीजिये। (दोनों जाते हैं)

राणा—कैसी विचित्र घटना है!

बल्लजी—महाराज, कुछ भी हो, आपके लिये तो यह दैवी वर-
दान है।
(व्यंग्य से) आपको न शस्त्र उठाने पड़े और न समय की
प्रतीक्षा ही करनी पड़ी।

(परदा गिरता है)

दूसरा दृश्य

(स्थान—उदयपुर, एक बाज़ारी सड़क। कुछ लोग आ जा रहे हैं।)

एक राजपूत—(सामने आते हुए दूसरे राजपूत से) कहिये हरिसिंह
जी, कुशल समाचार तो है ?

हरिसिंह—भैया रामसिंह, इधर किसी काम को जा रहा था कि
आपके दर्शन हो गये। आप तो बड़ी सजधज के साथ जा
रहे हैं, कहिये किधर ?

रामसिंह—ज़रा महलों में जा रहा हूं राणा जी को बधाई देने।

हरिसिंह—बधाई ! वह किस बात की ?

रामसिंह—आपको पता नहीं क्या ? चित्तौड़ जो मिल गया है।

हरिसिंह—इस बात की ! क्या कहने ! हाँ भाई, बधाई क्यों न दी
जाय ! बड़े बाहुबल से जो इसे जीता है ! राजपूत शान
पर चार चाँद लगा दिये हैं।

रामसिंह—आप तो नाराज़ मालूम होते हैं।

हरिसिंह—मैं क्या ! सब राजपूत, जिनमें कुछ भी आत्म-अभिमान
का अंश है इससे नाराज़ हैं। सालुम्बा सरदार, बल्ल
जी, योध............

रामसिंह—(सामने देखकर) लो, वल्लजी भी आ रहे हैं, उनसे....
(वल्ल जी आते हैं) ।

वल्लजी—(उन्हें देखकर) यह क्या काना-फूसी हो रही है ? (दोनों उसे प्रणाम करते हैं ।)

हरिसिंह—रामसिंह जी राणा जी को चित्तौड़ पाने पर बधाई देने जा रहे हैं।

वल्लजी—अपना अपना विचार है। हम लोग तो यह समझे हैं कि इस लाभ से मेवाड़-वीरता का अपमान हुआ है ।

रामसिंह—अपमान कैसा ! कोई भीख थोड़े मांगी है। सागरजी हमारे अपने हैं...

वल्लजी—अपने कैसे ! वृक्षकी लकड़ी यदि कुल्हाड़े से मिल जाती है तो वह भी कुल्हाड़ा कहलाती है। (आवेश में) तुम्हें पता नहीं रामसिंहजी, स्वर्गीय महाराणाजी क्यों आजीवन जंगलों की खाक छानते रहे ? क्यों भूख और प्यास से तड़पते बच्चों की बिलबिलाहट देखकर भी आँखों के आंसू पोंछते रहे, पर शत्रु के आगे उन्होंने हाथ नहीं पसारा। क्या 'सन्धि' इन दो अक्षरों के उच्चारणमात्र से ही वे राज्य और धन-सम्पत्ति के सुख को नहीं पा सकते थे ? बात यह थी कि उनमें देशभक्ति, आत्म-अभिमान और जातीय गौरव की मात्रा हम लोगों से कहीं अधिक थी ।

रामसिंह—अपना अपना विचार है वल्लजी, मैं तो यही समझता हूँ कि काम वह करना चाहिये जिससे साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे ।

वल्लजी—हाँ ठीक है ! तुम लाठी का प्रयोग ही न करो तो यह टूटे कैसे ?

रामसिंह—(क्रोध से) उसके प्रयोग का अवसर भी आपको जल्दी मिल जायगा। चित्तौड़ के हाथों से निकल जाने से जहांगीर बादशाह मौन थोड़े बैठा रहेगा।

वल्लजी—यह तो अति शुभ समाचार है। राजपूत तो सदा ऐसे दिन की प्रतीक्षा में रहते हैं कि कब उन्हें मातृभूमि के चरणों में बलि चढ़ाने का अवसर मिले। और उस शुभ अवसर पर वल्ल प्राणों को हथेली पर रखे सबसे आगे होगा।

रामसिंह—ये सब बातें हैं।

वल्लजी—बातें! वल्लजी की भुजा में शक्ति है, जिह्वा में नहीं। हमारा नाता उस देश से है जिसका 'प्राण जायँ पर वचन न जाई' आदर्श रहा है।

(बातें करते करते जाते हैं)

परदा उठता है।

तीसरा दृश्य

(स्थान—चित्तौड़, राजमहल । समय—प्रभात । सुसज्जित शयनागर, एक पलंग पर राणा अमरसिंह और पास ही दूसरे पलंग पर महारानी सोई हुई हैं।)

राणा—(निद्रित अवस्था में कुछ बड़बड़ाते हुए) न...हीं, न...हीं, मे...रा कोई अ प...रा ध। पि...ता जी, क्ष...मा।

रानी—(सहसा चौंक कर) महाराज ! महाराज !!

राजा—(उसी तरह बड़बड़ाते हुए) आप...श्री आ...ज्ञा...पाल...

रानी—(घबराहट से उठकर महाराज को जगाती है) महाराज, क्या बात है ! किससे बातें कर रहे हैं आप ! कौन था वह !

राजा—(उठकर बैठ जाते हैं, पर उनकी दशा विक्षिप्तोंकीसी है) हूँ ! क्या कहा ? क्या है ? कौन थे वे ? वे ही तो थे, थे नहीं, हैं, सामने खड़े हैं पिता जी।

रानी—(विस्मय से) कहाँ हैं वे ?

राजा—(स्वस्थ होकर) चले गये क्या ?

रानी—क्या कह रहे हैं आप ? क्या आपने स्वप्न देखा है ?

राजा—(घबराये हुए) स्वप्न था क्या ? स्वप्न ही होगा, पर... (चुप हो जाते हैं)।

रानी—चुप क्यों होगये महाराज ? पर...?

राजा—पर ऐसे प्रतीत हुआ था जैसे पिता साक्षात् खड़े हैं और...

रानी—और क्या ?

राजा—सब कहो महारानी, अभी सुनाता हूँ। ज़रा स्वस्थ होने दो। (कुछ देर बाद)..... और मेरी ओर घूर घूर कर देख रहे थे। (जैसे अपने आप) वे ही थे, निस्सन्देह, वे ही थे। वही था उनका तेजस्वी भाल, वे ही थीं उनकी आजानुलम्बी भुजायें, वही था उनका विशाल वक्षस्थल, बिल्कुल वही थे। क्रोधभरी आँखों से उनकी आग की चिनगारियाँ निकल रही थीं, मानों मुझे भस्मसात् करने को थीं।

रानी—क्या वे कुछ वोले भी ?

राणा—हाँ, वोले—'अमर, तुम्हारा प्रण ?' मैंने कहा—'पिताजी, वह तो एक तरह से पूर्ण हो गया है। चित्तौड़ पर हमारा ही आधिपत्य है।'

रानी—फिर ?

राणा—यह सुनते ही उनकी आँखों में एक दम खून उतर आया और धिक्कारभरी आवाज़ में वोले—'कहते लज्जा नहीं आती ? राजपूती वाहुवल को कलंकित किया है तूने।'

रानी—फिर ?

राणा—मैंने तव वहुत गिड़गिड़ा कर क्षमा माँगी और प्रार्थना की कि कोई और आदेश देकर इस कलंक को मिटाने का अवसर दीजिए।

रानी—दिया फिर कुछ आदेश ?

राणा—उनके मुख से एक शब्द निकला-'अन्तल्ला' और और कुछ कहने को ही थे कि तुमने मुझे जगा दिया।

रानी—'अन्तल्ला' ! अन्तल्ला क्या ?

राणा—मैं भी इसका कुछ आशय नहीं समझा। (कुछ सोच कर) हाँ, एक दुर्ग का नाम है अन्तल्ला।

रानी—वही न जिसके विपय में आप एक दिन कह रहे थे कि वह अभी तक शत्रुओं के अधिकार में है ?

राणा—हाँ, वही।

रानी—अभी क्या ऐसी शीघ्रता है, उसे भी एक दिन हस्तगत किया जायगा। रही वात इस स्वप्न की। इसकी ओर विशेष

ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। जाग्रत अवस्था में जिन वस्तुओं का ध्यान रहता है स्वप्नावस्था में भी उन्हीं के चित्र आँखों के सामने से होकर निकला करते हैं। पलभर में मनुष्य स्वर्ग से लेकर पाताल तक घूम आता है।

राणा—मेरा भी यही विचार है।

रानी—यही बात है। आप चिन्ता न करें। हाँ, पुरोहित जी से पूछ-ताछ कर इसका कुछ उपचार करवा देना चाहिए।

राणा—यही होगा। (फिर दोनों सो जाते हैं)

परदा गिरता है

चौथा दृश्य

(चित्तौड़, स्थान—बाज़ार की एक चौड़ी सड़क, कई लोग आ जा रहे हैं। सड़क के दोनों ओरों से दो राजपूत आते दिखाई देते हैं।)

एक राजपूत—विजयसिंह, कहाँ जा रहे हो ? (उसकी ओर ग़ौर से देखकर) आप इतने घबराये से क्यों हैं ?

दूसरा राजपूत—(बहुत धीरे से) देवीसिंह, क्या आपने सुना ? अभी समाचार मिला है कि बादशाह जहाँगीर ने मेवाड़ पर आक्रमण करने का पक्का विचार कर लिया है।

विजयसिंह—यह बात है ! फिर तुम कहाँ जा रहे हो ?

देवीसिंह—सालुम्बा सरदार की ओर से यह समाचार बल्लजी को पहुँचाने जा रहा हूँ। साथ ही उन्होंने बल्लजी से पूछा है कि इस परिस्थिति में क्या करना चाहिए।

विजयसिंह—वे बेचारे क्या कर सकेंगे ? राणाजी की आज कल जो दशा है वह किसी से छिपी नहीं है। जब से चित्तौड़

मिला है रात दिन आमोद-प्रमोद में ही डूबे रहते हैं। इन्हें क्या, मेवाड़ डूबे या तरे।

देवीसिंह—बात तो तुम्हारी ठीक है! पर क्या चूड़ावत सरदार और वल्लजी जैसे वीर मेवाड़ को पददलित होता देख सकेंगे? मैंने तो सुना है कि यदि राणा जी के आदेश की अवधीरणा भी करनी पड़ी तो भी ये वीर मेवाड़ की रक्षा का भार अपने ही कन्धों पर लेने को उद्यत हैं।

विजयसिंह—बात है भी ठीक। जिस मातृभूमि मेवाड़ की रक्षा के लिये सीसोदियों के रक्त की नदियाँ बह चुकी हैं, जिसकी झोंपड़ी से लेकर उच्च अट्टालिकाओं की प्रत्येक ईंट में वीर राजपूतों के बलिदानों की कथायें मूक भाषा में लिखी हुई हैं, जिसकी सेवा में बप्पारावल से लेकर महाराणा प्रताप तक महाबली राजपूतों ने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है, उसे क्या एक कुलकलंक की अयोग्यता के कारण कोई भी मेवाड़ी मुगलों से पददलित होते देख भी सकेगा?

देवीसिंह—मालूम तो यह होता है कि किसी भी वीर का इशारा पाते ही राजपूत-वीरता का सागर एक ही साथ उमड़ने लगेगा।

विजयसिंह—होना भी यही चाहिए। अच्छा भैया, अब मुझे जाना चाहिए, देर न होजाय।

देवीसिंह—अच्छा, जाओ, मैं भी एक आवश्यक कार्य से निबट कर सरदार को मिलूंगा।

(दोनों अपनी अपनी ओर जाते हैं)

(परदा उठता है)

पाँचवाँ दृश्य

(चित्तौड़, स्थान—राजमहल का एक विशाल कमरा जिसमें आमोद-प्रमोद की सब सामग्री विद्यमान है। दीवारों पर सुन्दर चित्र टंगे हुए हैं। प्रत्येक खिड़की का द्वार कामदार रेशमी परदों से सुसज्जित है, स्वर्ण के पात्रों में भरे हुए सुगन्धयुक्त पदार्थों के सुवास से सारा भवन महक रहा है। फर्श पर बहुमूल्य ग़लीचे बिछे हैं। छतों के साथ रंगबिरंगे झाड़-फानूस और कंदीलें लटक रही हैं। एक बहुमूल्य मणिजटित चौकी पर राणा अमरसिंह बैठे हैं। उनकी दोनों ओर कुछ राजपूत बैठे हैं।)

राणा—तो यह समाचार सत्य ही समझना चाहिए ?

करुणासिंह—हाँ, सरकार ! सत्य ही है। मुझे जयसिंह ने बताया है।

राणा—जयसिंह को किसने बताया है ?

करुणासिंह—इसका तो मुझे ज्ञान नहीं।

रामसिंह—यह सारी की सारी बात मिथ्या है सरकार। यह सब आप के शत्रुओं की चाल है।

भोलासिंह—यही बात होगी सरकार, वे लोग कब चाहते हैं कि आपके जीवन के शेप दिन कुछ आराम से कटें !

रामसिंह—यदि इसमें कुछ सचाई भी हो तो भी महाराज, जहाँ तक हो सके युद्ध से पीछा छुड़ाना ही चाहिये।

करणसिंह—सुनने में आया है कि सम्राट जहांगीर का बल और प्रताप अपने पिता से भी बढ़ चढ़ गये हैं।

भोलासिंह—इसमें क्या सन्देह है। तभी तो भारतभर के हिन्दू और मुसलमान शासकों ने उनकी शरण ली है।

रामसिंह—यही तो उनकी बुद्धिमानी है। व्यर्थ विपत्ति कौन मोल ले!

भोलासिंह—जिस जिसने मुग़ल-सम्राट् का आश्रय लिया है, वह आनन्द में है, उसे न किसी का खटका और न किसी का भय है। चैन की बंसी बजाते हुए, सुख के दिन काट रहा है।

करणसिंह—वे लोग और करते भी क्या! क्या सम्राट् की अपार शक्ति के सामने कोई भी ठहर सकता है!

(दौवारिक आता है)

दौवारिक—(अभिवादन कर) महाराज, सालुम्बा सरदार जी, बल्लजी और कुछ सरदार द्वार पर खड़े हैं। प्रवेश की अनुज्ञा चाहते हैं।

राणा—उन्हें सादर ले आओ।

(सब के सब चुप हो जाते हैं और त्रस्त से एक दूसरे की ओर देखने लगते हैं। सालुम्बा सरदार, बल्लजी, योध, भणजी, अचलेश, दिल्लू, चतुर्भान और कुछ और राजपूत सरदार आते हैं और महाराज को प्रणाम कर निर्दिष्ट आसनों पर बैठ जाते हैं।)

सालुम्बा सरदार—(महाराणा की ओर देखकर और कुछ मुस्करा कर) महाराज, आपको जहांगीर के आक्रमण का समाचार इन लोगों द्वारा विदित ही हो गया होगा?

—हाँ, सरदार जी, इन से पता लगा है कि सम्राट् जहांगीर मेवाड़ पर आक्रमण करने के मनसूबे बांध रहा है।

ल्लजी—(व्यंग्य से) मेवाड़ को इस संकट के समय क्या करना चाहिए इस विषय पर भी इन लोगों की (हाथ से सबकी ओर निर्देश कर) सम्मति महाराज को मिल चुकी होगी ?

णा—हाँ, मैं भी इनसे सहमत हूँ कि मुगल-सम्राट्-रूपी अभेद्य चट्टान से टक्कर लेना इस समय केवल माथा ही फोड़ना होगा।

रामसिंह—यह है भी ठीक। हम अकेले क्या कर सकते हैं जब कि और सब लोगों ने उसी छत्र की छाया का आश्रय लेना उचित समझा है ! अकेला चना भाड़ नही फोड़ सकता। इस समय न हमारे पास धन है और न सेना है।

वल्लजी—इसलिए हमें नपुंसकों की तरह मुगल-सम्राट् के चरणों में गिड़गिड़ाकर पूर्वजों के कुकर्मों के लिये क्षमा और आगे के लिए उनकी सेवा में उपस्थित रहने की भिक्षा मांगनी चाहिए—यही न सम्मति है आपकी ?

राणा—वल्ल जी, सम्राट् से सन्धि करने के सिवा हमारे पास चारा ही क्या है ?

सालुम्बा सरदार—महाराज, यह मैं क्या सुन रहा हूँ ! महाराणा प्रताप के पुत्र के मुख से ऐसे शब्द सुनने से पहले मेरे कान ही क्यों नहीं विदीर्ण हो गये ! यही थी प्रतिज्ञा जो आपने मृत्यु-शय्या पर छटपटाते हुए पिताजी से की थी ! इसी वित्ते पर सीसोदीय कुल के गौरव की रक्षा करेंगे आप ! जरा विचारिये तो महाराज, आपके इस कार्य का फल क्या होगा ? आपके पूर्वजों का नाम सदा के लिए कलंक-कालिमा से पुत जायगा !

मेवाड़ का वर्तमान राणा भीरुतावश मेवाड़ की रक्षा से विमुख होकर अपना कर्तव्य भूल गया तो मातृभूमि की रक्षा के लिए हम लोग ही—चन्दावत और शक्तावत, प्राणोत्सर्ग करेंगे, परन्तु मुगल सम्राट् से सन्धि न करेंगे।

(सब राजपूतों की आंखें क्रोध से लाल हो जाती हैं)

राणा—वल्लजी, आप हमारे पूज्य चाचा शक्तिसिंह के सुपुत्र हैं मेवाड़ जैसे मेरा है वैसे आपका भी है। मैं आपका साथ देने को.........

कल्याणसिंह—राणा जी, आप साथ देने को तो उद्यत हैं, परन्तु...

राणा—परन्तु......(कुछ सोचकर) यह भी देखना है, कि विजय की कुछ आशा भी है!

(वल्लजी का मुख क्रोध से लाल हो जाता है। उनकी आंखों से चिनगारियां निकलने लगती हैं। सारा शरीर कांपने लगता है।)

सालुम्बा सरदार—धिक्कार है आपको राणा जी! क्या आज तक राजपूत विजय की आशा से रणांगण में कूदते रहे हैं? क्या स्वर्गीय महाराज जी के जीवन से आपने यही कुछ सीखा है? (क्रोध के आवेश में पास पड़ी हुई एक पीतल की छड़ को उठाकर उसके सामने रखे हुए आइने को प्रहार करते हैं। आइना चकनाचूर हो जाता है। और उसी क्षण राणा का दाहिना हाथ पकड़कर उसे आसन से खींच लेते हैं।)

सरदारो, तैयार हो जाओ (म्यान से तलवार निकालकर) और जल्दी रणभूमि को प्रस्थान करके राणा को इस कलंक से बचाओ।

रामसिंह, हरिसिंह—क्या आप में से कोई भी इन राजद्रोहियों को रोकने का साहस नहीं करेगा!

चल्लजी—राजद्रोही हम हैं या तुम, जो मित्रता की ओट में राणा को कालिमा के गर्त में गिरा रहे हो!

(परदा गिरता है)

——:*o*:——

छठा दृश्य

(स्थान—चित्तौड़ के पास एक रम्य उद्यान में देवमन्दिर, पर वहां कोई व्यक्ति नहीं। केवल राणा अमरसिंह उद्भ्रान्त की सी अवस्था में खड़े हैं।)

राणा—(अपने आप) बड़ी कठिनता से मैं यहां पहुँच पाया हूं। (क्रोध से) मेवाड़ के राणा की ऐसी दुर्दशा! मुझे खींच कर आसन से उठा दिया गया और मैं कुछ भी न कर सका। सब के सब मुँह ही देखते रह गये और कर धर कुछ न सके! उनकी ऐसी मजाल! मैं यदि इस अपमान का प्रतिशोध न करूं तो धिक्कार है मुझे! मैं मेवाड़ का राणा क्या हुआ, एक च्यूंटी हुआ, जो चाहे मुझे पद-दलित कर जाय और मैं चुप रहूं। यह नहीं होगा मैं इसी समय इसका बदला..............(सहसा एक व्यक्ति मन्दिर के

पीछे से आता है। उसके शरीर पर केवल एक रेशमी धोती है जिसका एक छोर कंधों पर ले रक्खा है। भाल पर त्रिपुंड्र और गले में रुद्राक्ष-माला हैं। पाँवों में उसके खड़ाऊं हैं।)

वह व्यक्ति—शान्त हूजिए मेवाड़ के भाग्य-विधाता !

राणा—कौन !

वह व्यक्ति—इसी मन्दिर का पुजारी।

राणा—तो आपने................

पुजारी—व्यग्र न हूजिये महाराज ! मैंने आपकी बातें सुनी हैं !

राणा—सुनी हैं ?

पुजारी—सुनी हैं । इसी सम्बन्ध में एक ब्राह्मण के नाते आपको कुछ कहने का अधिकार भी रखता हूँ।

राणा—क्या कहना चाहते हैं आप ?

पुजारी—यही कि सालुम्बा सरदार और वल्लजी आदि राजपूतों ने जो भी कुछ किया है आपके हित के लिये किया है।

राणा—क्या मेरा अपमान भी............

पुजारी—उन्होंने आपका अपमान नहीं किया है महाराज, बल्कि अपना कर्तव्य पालन किया है, भावी अपमान से चित्तौड़ाधिपति की रक्षा की है। ज़रा सोचें तो महाराज, जब किसी देश का शत्रु बवंडर की गति से उमड़ता चला आ रहा हो, और उस देश का अधिपति, जिसका कर्तव्य उसकी रक्षा करना हो, अपना कर्तव्य भूले आमोद-प्रमोद में व्यस्त पड़ा हो तो उस समय देशहितैषियों का क्या धर्म है ? ज़रा सोचिये तो, आपकी नसों में उनका रक्त है जिन्होंने जीवन

भर विपत्तियों का सामना किया है, परन्तु देशध्वजा को नीचे नहीं होने दिया। उन्हीं के शत्रुओं से क्या आप सन्धि करेंगे, महाराणा की निर्मल कीर्ति को मिट्टी में मिलायेंगे? जिस देह की रक्षा के लिए आप इतना कुछ कर रहे हैं वह तो नश्वर है। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों इसे छोड़ना ही पड़ेगा। तो क्या इसके लिए अनश्वर यश और कीर्ति का परित्याग उचित है?

राणा—(सोचते सोचते) आपकी बातें.......कुछ समझ में...... आ रही हैं।

पुजोरी—समझ में क्यों न आयेंगी सीसोदिय-कुलावतंस। जब साधारण से साधारण राजपूत भी मातृ-भूमि पर न्यौछावर होने को कमर कसे खड़े हैं तो फिर आप तो मेवाड़ के अधिपति हैं, महाराणा के अंशज हैं। आपको तो सबके आगे होकर उनका संचालन करना चाहिए। (कुछ आवेश में) किन्तु यदि आप, मातृ-भूमि के दुर्भाग्यवश, अपना कर्तव्य पालन न करेंगे तो उसे और करेंगे। उस समय आपकी देश में क्या सत्ता रहेगी?

राणा—(कुछ आवेश में) अब कुछ और कहने की आवश्यकता नहीं देखता। मैं भूला हुआ था। अपनी भूल का मुझे बहुत दुःख हुआ है। जो अन्याय मैंने सालुम्बा सरदार और दूसरे राजपूत वीरों से किया है, उसके लिये मैं प्रायश्चित

करूंगा। उनसे क्षमा मांगूंगा। (ज़ोरसे सिंहनाद करता है) मातृभूमि मेवाड़ की जय !

राणा और पुजारी (ऊंचे स्वर में) मातृभूमि मेवाड़ की जय !

(चारों ओर से हज़ारों कण्ठों से एकदम आवाज़ आती है— मातृभूमि मेवाड़ की जय ! इतने में सालुम्बा सरदार, वल्ल जी, भणजी, योध और हज़ारों सैनिकों के साथ आजाते हैं और राणा को घेरकर—मातृभूमि मेवाड़ की जय ! का सिंहनाद करते हैं।)

राणा—(सहर्ष) मेरे सरदारो, मैं स्वीकार करता हूँ कि सालुम्बा सरदार और वल्लजी आदि राजपूत वीर सीसोदीय कुल के सच्चे हितैषी हैं। मैं पथभ्रष्ट हो गया था। जो वे मुझे मार्ग पर लाये हैं, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। मैंने जो अन्याय उनसे किया है उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। वीरो, इस संकट के समय स्वर्गीय पिताजी आपके साथ नहीं हैं, पर उनका पुत्र अमरसिंह आपके साथ है और आजीवन रहेगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक शत्रुओं का समूल विध्वंस नहीं कर लूंगा तब तक यह हाथ (हाथ को आगे करता है) शस्त्र नहीं छोड़ेगा। (सब लोग उच्चस्वर में)—राणा अमरसिंह की जय ! मातृभूमि मेवाड़की जय !!

वल्लजी—हम मेवाड़-निवासी अपने राणा के चरणों में अटल भक्ति और श्रद्धा अर्पित करते हैं और प्रण करते हैं कि जब

तक चूड़ावतों और शक्तावतों का एक भी बालक विद्यमान रहेगा तब तक वह देशध्वजा को कभी नीचा न होने देगा।

सब—मेवाड़ाधिपति की जय ! राणाजी की जय !!

(परदा उठता है)

—:०:—

सातवाँ दृश्य

(चित्तौड़, स्थान—राजदरबार, कुछ दरबारी बैठे हैं।
राणा अमरसिंह और कुछ मन्त्री सालुम्बा सरदार,
बन्दा ठाकुर और दूसरे चूड़ावत सरदार
और बल्लजी, योध, भगाजी, अचलेश
दिल्लू, चतुर्भान आदि कुछ
शक्तावत सरदार आते हैं
और यथास्थान
बैठ जाते हैं।)

(दोनों पक्षों के सरदारों के पीछे उनके कुछ चारण आते हैं।)

राणा—(चूड़ावत सरदार से) सरदार जी, कुछ पता चला है कि जहांगीर की सेना कब कूच करने को है ?

चूड़ावत सरदार—अन्नदाता, कल ही मुझे लौटे हुए एक दूत ने बताया है कि वे अभी तय्यार हो रहे हैं। वे चाहते हैं इस समय दोनों पुरानी पराजयों की लज्जा को मिटाना; इसलिए बहुत तय्यारी कर रहे हैं।

वन्दा ठाकुर—सुना गया है धर्मावतार, कि बादशाह इस समय युद्ध संचालन का भार अपने पुत्र परवेज़ को दे रहा है।

वल्लजी—देता रहे हमें इससे सरोकार नहीं ! परवेज़ हो या को और हमने तो जो कोई आये उससे लोहा लेना है। ए एक राजपूत हज़ार हज़ार मुग़लों के समान है महाराज।

राणा—इसमें क्या संदेह है वल्ल जी, जब तक मेवाड़ के गौर का भार शक्तावत और चूड़ावतों के कंधों पर है तब त इसे किसका भय ! साथ ही मैं देख रहा हूं कि इस सम हमारे सैनिकों और सेनाध्यक्षों का उत्साह-सागर ठा मार रहा है। अतः इस समय भी मुझे विजय की पूर आशा है।

योध—आपने सेना का हिरौल किसे सौंपने का विचार किया है सरकार ?

राणा—दो ही तो पक्ष हैं—चूड़ावत और शक्तावत ! जिसे ये लोग सर्वसम्मति से स्वीकार करेंगे उसे ही यह दिया जायगा।

सालुम्बा सरदार—हिरौल का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए। उसके अधिकारी चूड़ावत हैं ही महाराज, अब तक उन्हें ही य मिलता रहा है।

योध—चूड़ावतों को ही यह सदा क्यों मिलता रहे ! मेवाड़ लिए शक्तावतों के बलिदान क्या चूड़ावतों से व

हुए हैं ? इस समय यह इन्हें क्यों न दिया जाय ?

सालुम्ब्रा सरदार—यह कदापि न होगा। चूड़ावत अपने अधिकार को कभी न छोड़ेंगे।

वल्लजी—यह भी कदापि न होगा। शक्तावत सदा चूड़ावतों के पीछे नहीं रहना चाहते।

(शक्तावतों के चारण अपने पक्ष का गौरव वर्णन करते हैं।)

एक चारण—अमर कीर्ति वप्पा रावल की विश्वविदित है,
अजयसिंह नरसिंह किसी से नहिं अविदित है।
जिनके आगे बाबर का सिर झुका समर में,
जिनका प्रातः नाम लिया जाता घर घर में।
वे भूषण मेवाड़ के स्वर्गीय संग्राम थे'
मातृभूमि के हित हुए अर्पित जिनके प्राण थे॥

दूसरा चारण—छोड़ा जन्मस्थान आत्म-अभिमान न छोड़ा,
छोड़ा खान औ' पान तीर-संधान न छोड़ा।
छोड़े तन से प्राण शत्रु-संग्राम न छोड़ा,
छोड़ा निज धन-धान देश का ध्यान न छोड़ा।
शक्तावत गोलोकगत वे राणा परताप थे,
रिपु-सियार सुन भागते हुँकृत जिनके चाप के॥

तीसरा चारण—असिपुत्रिका-धारा को अंगुलि पर परखा,
रुधिर-धार को देख देख जिनका चित हरखा।
तजा यदपि चित्तौड़ विमुख भाई से होकर,
देखा आपद्ग्रस्त किया आलिंगन रो कर।
शक्तावत कुलका प्रमुख शक्तिसिंह वह वीर था,
मातृभूमि बलिवेदि पर जिसने तजा शरीर था॥

चौथा चारण—किनका रुधिर स्वातंत्र्यहित निज देशके बहता रहा ?
किन का हृदय इसके लिए दुख-वेदना सहता रहा ?
थे कौन जो कर में लिये सिर को समर को भागते ?
थी देश की चिन्ता किन्हें दिन रात सोते जागते ?
शक्तावतों के विन किन्हें देशोन्नति का ध्यान है ?
शक्तावतों के विन किन्हें निज देश का अभिमान है ?

(चूड़ावत पक्ष के चारण चूड़ावतों का गुण गौरव बताते हैं।)

एक चारण—पितु आज्ञा सिर धार महल तज जंगल पाया,
दसकन्धर निश्शेष किया अघपुंज नसाया।
आसुर दल दल दिया जगत् से त्रास मिटाया,
भारत भू को कर पुनीत सुरलोक बनाया।
उन्हीं राम के वंशधर चूड़ावत ये वीर हैं,
जिनके गुण निस्सीम हैं, पांचाली के चीर हैं॥

दूसरा चारण—मातृभूमि स्वातन्त्र्यहेत जिन खड्ग उठाया,
मुख से निकला एक बार जो वचन निभाया।
लिया भीष्म अवतार मनों फिर भू में आकर,
जीवन किया व्यतीत सकल अविवाहित रह कर।
नरपुङ्गव उस चंड के चूड़ावत संतान हैं,
सकल जगत् में व्याप्त है जिनकी कीर्ति महान है॥

तीसरा चारण—अकबर ने जब पुण्य भूमि को आ घेरा था,
भीरु हृदय ने मातृभूमि से मुंह फेरा था।
कर में ले करवाल कौन रण में थे आये ?

किनसे हो भयभीत शत्रु रण से थे धाये।
जयमल, पुत्तू, महीदास चूड़ावत थे ये सभी,
रण में छोड़े प्राण पर नहीं जी छोड़ा कभी ॥

चौथा चारण—इनके यश की ध्वजा गगन में फहराती है,
अब भी जो अरिदल-हृदयों को दहलाती है।
बलीभूत इनके तन पर चित्तौड़ खड़ा है,
जिसका हम सबको गौरव अभिमान बड़ा है।
अधिकारी हीरौले के चूड़ावत ही हैं सभी,
क्या मृगेन्द्र पद को कहीं जम्बुक पा सकते कभी!

राणा—(कुछ सोचता हुआ) आप लोगों ने मुझे बड़े असमंजस में डाल रक्खा है। चूड़ावत और शक्तावत मेवाड़ की दो आँखें हैं, दोनों मुझे एक सी प्रिय हैं। अब हिरौल....

सालुम्बा सरदार—(बीच में ही काटकर) हिरौल के प्रश्न का निर्णय पहले रणभूमि में होजाय। हममें से जो शेष रह जाय वही हिरौल पाने का अधिकारी हो।

बल्लूजी—हमें सहर्ष स्वीकार है।

राणा—यह कदापि न होगा। इतने शक्तिसम्पन्न शत्रु का सामना करने से पूर्व अपनी शक्ति का ह्रास करना कहाँ की बुद्धि-मानी है? यह तो ऐसे हुआ जैसे चलने की शक्ति आने से पूर्व ही मनुष्य पंगु बना दिया जाय।

मन्त्री—महाराज, यही तो हम लोगों में बुराई है। आपस में ही लड़ मर कर शत्रुओं को बल देते रहे हैं। खेद है कि

कपिला है। (उठकर उसके पास जाती है और उसकी पीठ पर हाथ फेरती हुई) कपिला, अब मैं जा रही हूँ (बछिया अपना मुंह उठाकर उससे प्यार करती है) थोड़े दिनों के लिए केवल, देखना पीछे, उदास मत होना। दुर्गा से कह छोड़ूंगी, वह तुझ से प्यार करेगी, मेरे जैसा, घबराना नहीं।

(एक ओर से पैजनियों की आवाज़ आती है) अब वह आ रही है। ज़रा छिपकर उसे छकाती हूँ। (एक आड़ में छिप जाती है। एक कन्या आती है। उसकी उम्र लगभग सोलह-सत्रह बरस की है। रंग बहुत गोरा और अंगविन्यास सुन्दर है। तन पर उसके राजपूतों की वेष-भूषा—चुनी, अंगिया और लहंगा है और पांवों में पैजनियां हैं। कांख मे एक गगरी उठाये है।)

कन्या—(आकर) क्या अब तक गौरी नहीं आई ? लौट तो नहीं गई ? (ऊंची आवाज़ से) गौरी ! गौरी !! अरी ओ गौरी !!! (बछिया रंभाती है—बाँ, बाँ, बाँ, इधर देखकर) कपिला तू है खड़ी यहाँ ? गौरी कहां है ? तू यहाँ है तो वह भी यहीं होगी। (अपने आप) अब बोलेगी। (कुछ सुनाकर) बड़ी नटखट है। जब कभी देखो इसे घर की और घरवालों की पड़ी रहती है। इसे ज़रा देर हुई नहीं और डंडे बरसने लगे सिर पर।

गौरी—(आड़ के पीछे से निकलकर) कौन है मुझे ढंडे बरसाने वाला ! आज मैं दिनभर न जाऊंगी। देखूं बरसाये तो ढंडे कोई !

दुर्गा—(हँसी से लोट-पोट होती हुई) देखा, कैसा मन्त्र है मेरे पास ! सांप बांबी से अपने आप निकल आया।

गौरी—अच्छा, यह बात है ! ज्यों ज्यों उम्र में तू बड़ी हो रही है दुर्गा, तेरी चंचलता और नटखटपन भी बढ़ते जा रहे हैं।

दुर्गा—अच्छा जाने दो इन प्रमोद की बातों को। ज़रा यह तो बताओ भला, आज शहर में इतनी चहल-पहल क्यों है ? जिसे देखो वही अस्त्र-शस्त्रों से सज रहा है। आते आते मुझे कई बार घुड़सवारों के वर्ग कहीं जाते दिखाई दिये हैं। इसीलिये मुझे कुछ देर हो गई है।

गौरी—क्या तुम्हें यह भी पता नहीं ? कल चूड़ावत और शक्तावत अलग अलग अन्तल्ला को विजय करने के लिए प्रयाण करेंगे।

दुर्गा—अलग अलग क्यों ?

गौरी—यह निश्चय हुआ है कि जो अन्तल्ला को प्रथम विजित करेगा, उसी को मुग़लों के युद्ध में हिरौल मिलेगा।

दुर्गा—तब तो सब लोग जायेंगे !

गौरी—मैं तुम्हारा संकेत समझ गई हूं। हाँ, तुम्हारे वे भी जायेंगे। मैंने तो सुना है कि शक्तावतों का आधिपत्य वे ही करेंगे।

दुर्गा—हे भगवान !

गौरी—दुर्गा, तुम उदास क्यों हो ? राजपूत-ललनायें तो इस दिन की उत्सुकता से प्रतीक्षा करती हैं।

दुर्गा—यह बात नहीं गौरी बहिन। यदि मेरी देह उनके चरणों पर अर्पित हो चुकी होती तो मैं भी इस संकट में कुछ न कुछ करके अपने आपको धन्य मानती ! पर अब तो·······

गौरी—अब तो क्या ? अब भी बहुत कुछ कर सकती हो। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि उनके संग·········

दुर्गा—(उसे बीचमें ही काटकर) क्या रामसिंह जीजा भी जायेंगे ? तुम्हीं ने तो कहा था कि ये युद्ध के नाम से भय खाते हैं।

गौरी—तभी तो साथ जा रही हूँ। बड़ी कठिनता से उन्हें जाने को मनाया है। वे मान तो गये हैं पर मुझे भय है कि थोड़ी दूर चलकर किसी बहाने लौट न आयें। इसीलिये मैं साथ जाऊंगी कि उन्हें लौटने न दूंगी।

दुर्गा—क्या वे तुम्हारा साथ चलना पसंद करेंगे ?

गौरी—उनको पता ही न लगेगा।

दुर्गा—परन्तु कहां तक छिपा सकोगी अपने आप को ?

गौरी—मेरा नाम तब गौरी न होगा, जोरावरसिंह होगा।

दुर्गा—क्या वेष बदलोगी !

गौरी—इसमें कठिनता ही क्या है ! जोरावरसिंह बनकर चूड़ावत की सेना में भर्ती हो जाऊंगी। हम राजपूत ललनाओं को तलवार, भाला, बर्छी चलाना तो आता ही है, फिर क्या दिक्कत होगी।

दुर्गा—बहन, मुझे भी कोई मार्ग बताओ। मैं उनके अंगसंग रहना चाहती हूँ। यदि ईश्वर करे कुछ ऐसी-वैसी बात हो भी जाय तो उनके चरणों में देह छोड़ने की लालसा को पूर्ण कर पाऊंगी।

गौरी—यह कौनसी बड़ी बात है! दूसरे, तुम्हें तो वे पहचानते ही नहीं। अपना नाम दुर्गासिंह बताकर शक्तावत सेना में भरती होजाना। फिर वल्लजी क्या, कोई भी तुम्हें नहीं पहचानेगा।

दुर्गा—मुझे पुरुष-छद्म बनाने का ढंग कौन बतायेगा?

गौरी—मैं। हम दोनों एक साथ चलेंगी, नहीं चलेंगे (हंसती है)।

दुर्गा—ठीक है, अब चलें।

(गौरी चलती चलती कपिला से प्यार करती है।)

गौरी—कपिला, उदास मत होना मेरे पीछे। शीघ्र लौटकर आऊंगी। दुर्गा भी यहां न होगी, अच्छा! क्या तेरी आँखों में आंसू! पगली! ऐसे शुभ अवसर पर भी कोई आँसू बहाता है। सोचती है शायद न लौटूं!

(बातें करतीं करतीं जाती हैं)

(परदा उठता है)

गौरी—दुर्गा, तुम उदास क्यों हो ? राजपूत-ललनायें तो इस दिन की उत्सुकता से प्रतीक्षा करती हैं।

दुर्गा—यह बात नहीं गौरी बहिन। यदि मेरी देह उनके चरणों पर अर्पित हो चुकी होती तो मैं भी इस संकट में कुछ न कुछ करके अपने आपको धन्य मानती ! पर अब तो........

गौरी—अब तो क्या ? अब भी बहुत कुछ कर सकती हो। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि उनके संग..........

दुर्गा—(उसे बीचमें ही काटकर) क्या रामसिंह जीजा भी जायेंगे ? तुम्हीं ने तो कहा था कि ये युद्ध के नाम से भय खाते हैं।

गौरी—तभी तो साथ जा रही हूँ। बड़ी कठिनता से उन्हें जाने को मनाया है। वे मान तो गये हैं पर मुझे भय है कि थोड़ी दूर चलकर किसी बहाने लौट न आयें। इसीलिये मैं साथ जाऊंगी कि उन्हें लौटने न दूंगी।

दुर्गा—क्या वे तुम्हारा साथ चलना पसंद करेंगे ?

गौरी—उनको पता ही न लगेगा।

दुर्गा—परन्तु कहां तक छिपा सकोगी अपने आप को ?

गौरी—मेरा नाम तब गौरी न होगा, जोरावरसिंह होगा।

दुर्गा—क्या वेप बदलोगी !

गौरी—इसमें कठिनता ही क्या है ! जोरावरसिंह बनकर चूड़ावत की सेना में भर्ती हो जाऊंगी। हम राजपूत ललनाओं को तलवार, भाला, बर्छी चलाना तो आता ही है, फिर क्या दिक्कत होगी।

की शपथ लेकर सबके सम्मुख यह प्रण करताहूं कि अन्तल्ला दुर्गको विजय करके ही दम लूंगा और यदि इसमें असफल रहा तो चित्तौड़ को फिर अपना मुँह न दिखाऊंगा !

(शक्तावत-पक्षीय सैनिक—'शक्तावत शिरोमणि बल्लजी की जय' के नारे लगाते हैं। बल्लजी अपने स्थान को लौट जाता है)

राणा—मेवाड़ के बहादुर वीरो, मुझे आप लोगों को मातृभूमि की सेवा के लिए प्रयाण करते देखकर बहुत आनन्द हो रहा है। तुम लोग वही कार्य करने को जा रहे हो जो तुम्हारे पुरखा सदियों से करते आये हैं। राजपूतों ने मातृभूमि मेवाड़ की रक्षा में जैसे बलिदान किए हैं, आप लोगों से वे छिपे नहीं हैं। मुझे आशाहै कि तुम भी किसी से पीछे न रहोगे। अन्तल्ला को अभेद्य बताया जा रहा है, परन्तु राजपूती तलवार और हिम्मत के आगे कुछ भी अभेद्य नहीं। ईश्वर तुम्हें सफलता प्रदान करें।

(कुछ राजपूत-नारियां एक हाथ में पुष्पमाला और दूसरे में आरती की थाली लिए आती हैं, और दो पक्षों में विभक्त होकर अपने-अपने पक्ष के पास खड़ी होजाती हैं।)

(वे गाती हैं)

सब—उठो उठो भारत-सन्तानों, रणभेरी-आह्वान सुनो,
उठो उठो माँ उठा रही है, माँ के क्रन्दनगान सुनो।

नौवाँ दृश्य

(स्थान चित्तौड़—खुला मैदान, उसके ठीक बीचमें गड़े हुए एक ऊंचे लट्ठ पर सीसोदीय राज्य का झंडा लहरा रहा है। मैदान के दोनों ओर पंक्तियों में बहुत से राजपूत सैनिक खड़े हैं। दोनों पंक्तियों के सिरों पर उनके अध्यक्ष खड़े हैं, सब अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हैं। एक ओर सालुम्बा सरदार, चंदा ठाकुर और कुछ और चूड़ावत सरदार खड़े हैं और दूसरी ओर सामने की पंक्ति में वल्लजी, योध, अंचलेश आदि शक्तावत सरदार खड़े हैं राणा अमरसिंह आते हैं। सब अपने अपने स्थानों पर खड़े उन्हें अभिवादन करते हैं।)

सालुम्बा सरदार—(झंडे के पास आकर) मैं सीसोदीय कुलावतंस श्री बप्पा रावल और शूर चंड के चरणों की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि तन में प्राण रहते अन्तल्ला को हस्तगत करने में आगा पीछा न देखूंगा, और यदि इस प्रयास में असफल रहा तो चित्तौड़ में प्रवेश न करूंगा।

(सब चूड़ावतवंशीय सैनिक 'सालुम्बा सरदार की जय' के नारे लगाते हैं। चूड़ावत सरदार लौटकर अपने स्थान को चला जाता है।)

बल्लजी—(झंडे के पास आकर) मैं सूर्य-कुल-भूषण बप्पा रावल और प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रतापसिंह के चरणों

की शपथ लेकर सबके सम्मुख यह प्रण करताहूं कि अन्तल्ला दुर्गको विजय करके ही दम लूंगा और यदि इसमें असफल रहा तो चित्तौड़ को फिर अपना मुँह न दिखाऊंगा !

(शक्तावत-पक्षीय सैनिक—'शक्तावत शिरोमणि बल्लजी की जय' के नारे लगाते हैं । बल्लजी अपने स्थान को लौट जाता है)

राणा—मेवाड़ के बहादुर वीरो, मुझे आप लोगों को मातृभूमि की सेवा के लिए प्रयाण करते देखकर बहुत आनन्द हो रहा है । तुम लोग वही कार्य करने को जा रहे हो जो तुम्हारे पुरखा सदियों से करते आये हैं । राजपूतों ने मातृभूमि मेवाड़ की रक्षा में जैसे बलिदान किए हैं, आप लोगों से वे छिपे नहीं हैं । मुझे आशाहै कि तुम भी किसी से पीछे न रहोगे । अन्तल्ला को अभेद्य बताया जा रहा है, परन्तु राजपूती तलवार और हिम्मत के आगे कुछ भी अभेद्य नहीं । ईश्वर तुम्हें सफलता प्रदान करें ।

(कुछ राजपूत-नारियां एक हाथ में पुष्पमाला और दूसरे में आरती की थाली लिए आती हैं, और दो पक्षों में विभक्त होकर अपने-अपने पक्ष के पास खड़ी होजाती हैं ।)

(वे गाती हैं)

सब—उठो उठो भारत-सन्तानों, रणभेरी-आह्वान सुनो,
उठो उठो माँ उठा रही है, माँ के क्रन्दनगान सुनो ।

एक बालिका—

परवश जननी के पद-पंकज निगड़ों से आबद्ध हुए,
पेशल कर-किसलय-युग उसके पाशजाल से बद्ध हुए।
हिम-दीधति-सम मुखमण्डल पर शोकाभ्रघटा बनी हुई,
नयन-कमल की पंखुड़ियाँ हैं बाष्पसार से सनी हुई।
बैठे क्यों चुपचाप निरुद्यम वीरों का सन्मार्ग चुनो॥
सब—उठो उठो, भारत-सन्तानों, रणभेरी-आह्वान सुनो,
उठो उठो माँ उठा रही है, माँ के क्रन्दन-गान सुनो॥

दूसरी बालिका—

निर्जन, निर्जल, शुष्क देश से एक विदेशी दल आया,
शस्य-श्यामला धरा देख कर मुँह में पानी भर आया।
स्वर्-पुनीत इस दिव्य देश के शासक बनने आ पैठे,
आये थे जो आग माँगने घर के मालिक बन बैठे,
उन्हीं नराधमगण के अत्याचारों का कुछ हाल सुनो॥
सब—उठो उठो, भारत-सन्तानों, रणभेरी-आह्वान सुनो,
उठो उठो, माँ उठा रही है, माँ के क्रन्दन-गान सुनो॥

तीसरी बालिका—

कोटि-कोटि सुत जननी होकर फिर भी दासी बनी रही,
कोटि-कोटि धन-धारिणी होकर फिरभी निर्धन बनी रही।
कोटि-कोटि गण अन्नदायिनी, भोजन-परवश पड़ी हुई,
कोटि-कोटि नहरों की मालिक, फिर भी परवश बनी हुई।
कुछ तो सोचो, कुछ तो चेतो आर्त-दीन-हाहाकार सुनो॥

सब—उठो उठो, भारत सन्तानों, रणभेरी-आह्वान सुनो,
उठो उठो, माँ उठा रही है, मांके क्रन्दन-गान सुनो ॥

चौथी बालिका—

जग के बंधन तोड़ फोड़ कर छोड़ो ममता माया को,
छोड़ो भाई, छोड़ो बहनें, छोड़ो घर की साया को।
क्यों चिमटे हो इस काया से, यह तो आती जाती है,
अभी गई फिर नई आ गई, सदा न रहने पाती है।
पर आत्मा न कभी मरती है, उसकी ही आवाज़ सुनो ॥

सब—उठो उठो, भारत-सन्तानों, रणभेरी-आह्वान सुनो,
उठो उठो, माँ उठा रही है, माँ के क्रन्दन-गान सुनो ॥

पाँचवी बालिका—

पुष्प-मालिका, चंदन, रोली लिये यहाँ पर आई हैं,
पत्नी, बहिन, तुम्हारी जननी जलते दीपक लाई हैं।
दीपक ये स्वातन्त्र्य-चिह्न हैं, ये न कभी बुझने पायें,
विद्युत् चमके, बादल गरजे, नभ में कृष्ण घटा छाये।
इसी दीप की ज्वलत् शिखा पर शलभोंका बलिदान चुनो॥

सब—उठो उठो, भारत सन्तानों, रणभेरी-आह्वान सुनो,
उठो उठो, माँ उठा रही है, माँ के क्रन्दन गान सुनो ॥

(प्रत्येक बालिका अपने अपने सम्बन्धी को माला पहनाती है और तिलक लगाती है।)

सब— मालायें पहनाती हैं हम चन्दन, तिलक चढ़ाती हैं,
वीरों के उन्नत भालों को अपने आप सजाती हैं।
लाज तुम्हें इनकी रखनी है, पग आगे धरते जाना,
उन्नत भाल लिये घर आना, वरना रणशय्या पाना ॥

अबलाओं की यही याचना है इसको धर कान सुनो।
उठो उठो, भारत-संतानों, रणभेरी-आह्वान सुनो,
उठो उठो, माँ उठा रही है, माँ के क्रन्दन-गान सुनो ॥
इसी तरह जयमालायें औ' दीप, तिलक-संभार लिये,
द्वार-द्वार पर खड़ी रहेंगी, हृदयों के उद्गार लिये।
गर्वोन्नत ग्रीवाओं में जब जयमालायें पहनावेंगी,
फलीभूत जीवन को पाकर स्वर्गानन्द मनायेंगी ॥
वरना सती-चिता ही होगा जीवन का अवसान सुनो।
उठो उठो, भारत-सन्तानों, रणभेरी-आह्वान सुनो,
उठो उठो, माँ उठा रही है माँ के क्रन्दन-गान सुनो ॥

(सब नारियां गाती गाती जाती हैं।)

(एक सोलह सत्रह वर्षकी शक्तावत-पक्ष की बालिका पुष्पमाला और थाल उठाये एक कोनेमें सिर नीचे किये लज्जित-सी खड़ी रहती है।)

योध—(वल्लजी से) भैयो, मालूम होता है इस बालिका का कोई सम्बन्धी नहीं है। फिर भी देशप्रेम से प्रेरित होकर चली आई है।

वल्लजी—क्या किया जाय फिर?

योध—आप हमारे नायक हैं, आप ही इसके उपहार को स्वीकार करें।

(वल्लजी उस बालिका के पास जाता है)

वल्लजी—(उस कन्या से) तुम्हारा कोई सम्बन्धी नहीं है क्या?

बालिका—है तो पर ·······

वल्लजी—पर क्या? (अपने आप) शायद अभी आया न हो। (उससे) अच्छा मुझे ही अपना सम्बन्धी मानो।

बालिका—(नीचे सिर किये हुए) मेरा अहोभाग्य !

बल्लजी—(हंसते हंसते) अब क्यो सम्बन्ध हुआ मेरा तुमसे !

बालिका—यह फिर बताऊंगी ।

बल्लजी—फिर क्यों ? अब क्यों नहीं !

बालिका—अब नहीं, फिर कभी ।

(उसके गले में माला डालती है)

बल्लजी—(हँसते हँसते) अच्छा, फिर सही ।

(लौटकर अपने अपने स्थान को जाते हैं)

(सब सैनिक, पहले चूड़ावत-पक्ष के और पीछे शक्तावत-पक्ष के पंक्तिक्रम में जाते हैं।)

(परदा गिरता है)

—꧁—

दूसरा अंक

पहला दृश्य

(चित्तौड़ से तीन-कोस की दूरी पर एक खुला मैदान। शक्तावतों का शिविर, उसमें कई तम्बू और शामियाने लगे हुए हैं। कई राजपूत सैनिक, कुछ सैनिक वेष में सशस्त्र और कुछ साधारण वेष में आ जा रहे हैं। शिविर के ठीक मध्य में एक बड़ा तम्बू खड़ा है। उस पर शक्तावत ध्वजा फहरा रही है। उसके बाहिर कुछ सशस्त्र सैनिक पहरा दे रहे हैं। उसके पास ही एक सुकुमार सैनिक वेष-भूषा से सज्जित उदास सा खड़ा है। एक राजपूत सरदार पास से गुज़रता हुआ उसके पास खड़ा हो जाता है।)

राजपूत सरदार—क्यों भाई, तुम ऐसे उदास क्यों खड़े हो ?

राजपूत युवक—सोच रहा हूं कि किधर जाऊँ।

राजपूत सरदार—लौट रहे हो क्या ?

राजपूत युवक—हाँ, लौटना पड़ा जो है।

राजपूत सरदार—क्यों ?

राजपूत युवक—सेनाध्यक्ष ने मेरी सेवा को स्वीकार नहीं किया।

राजपूत सरदार—भैया ने क्या ?

(तम्बू के अन्दर से एक राजपूत वीर निकलता है। वेष-भूषा से मालूम होता है कि वह सेनाध्यक्ष है।)

अध्यक्ष—योध भैया, यहां क्यों खड़े हो ? (ध्यान से देखकर) तुम्हारे पास कौन खड़ा है यह ? (पास आकर) अभी तुम गये नहीं दुर्गासिंह ?

योध—वल्ल भैया, यह कौन है ?

वल्लजी—यह एक युवक है। सेना में भर्ती होने आया था, पर इसकी सुकुमार देह और अल्प आयु देखकर दयावश मैंने इसे स्वीकार नहीं किया।

दुर्गासिंह—क्या हृदय की उमंगों का माप देह और आयु से होता है सरकार !

वल्लजी—फिर भी कार्य के अनुसार ही पात्र का निर्णय होता है।

योध—ठीक है युवक, तुम्हारी यह सुकुमार देह रण-क्षेत्र की कठिनताओं को सहन भी न कर सकेगी वास्तविक युद्ध की तो बात ही रही।

वल्लजी—(ज़रा मुस्कराकर) इसे नारी बनाते-बनाते विधाता के मन में आया कि इसे नर होना चाहिए, बस और कुछ नहीं सोचा और बना दिया इसे नर।

दुर्गासिंह—नारी जातिको आप हेय समझते हैं क्या ? क्या राजपूत-

नारियाँ नरों से किसी बात में कम रही हैं ? वलिदान की कसौटी पर वे खरी नहीं उतरीं क्या ?

वल्लजी—मैं नारी-महत्व का अपमान नहीं कर रहा, पर मेरी धारणा है कि नारियों का कार्यक्षेत्र नरों से अलग है।

दुर्गासिंह—विशेष अवसरों पर क्षेत्र भी वदलते रहते हैं । रानी पद्मनी और रानी कर्णवती भी तो नारियाँ थीं।

योध—तुम तो नारी नहीं हो, फिर तुम्हें क्यों चिढ़ हो रही है ?

वल्लजी—मेरा हृदय नहीं मानता भैया, ऐसी सुकुमार देह को रणाग्नि-कुण्ड में स्वाहा करना। अभी वहुत समय तक इसे माँ के स्नेह और पिता की संरक्षता की आवश्यकता है। जाओ भैया, हम तुम्हारी उमंगों को फिर कभी पूरा करेंगे (दुर्गासिंह सवाष्प नेत्रों से वल्लजी को अभिवादन करता है और फिर धीरे-धीरे चलता है ।)

योध—इस युवक का हृदय देशसेवा के लिये छटपटा रहा है। इसे हताश करना पाप होगा।

वल्लजी—मुझे इससे कुछ ऐसा मोह सा हो गया है कि मैं इसकी नवपल्लवित जीवनलता को अकाल में ही मुरझाने से वचाने की चेष्टा कर रहा हूं।

योध—निराश लौटने से तो इसका दिल और भी वैठ जायगा।

वल्लजी—यदि तुम चाहो तो उसे लौटा लो।

योध—(उच्च स्वर से) दुर्गासिंह ! भैया दुर्गासिंह !! लौट आओ।

(दुर्गासिंह लौट आता है ।)

वल्लजी—यह बताओ भाई कि तुम काम क्या करोगे ?

दुर्गासिंह—जो आप आदेश देंगे।

वल्लजी—मेरे पास तो केवल सैनिक का कार्य है। उसके मैं तुम्हें योग्य नहीं समझता।

दुर्गासिंह—मुझे अपने चरणों में ही ठिकाना दीजिए, उनकी सेवा का भार मैं अपने ऊपर लूंगा।

वल्लजी—(उठाकर) एक और मुसीबत मेरे गले पड़ी। अरे भाई, मैं युद्ध संचालन का कार्य करूंगा कि तुम्हारी देखभाल !

योध—भैया, मेरा यह विचार है कि इसे अपने पास ही रक्खें। थोड़ा बहुत काम इसे दे छोड़ा करें। इससे ही यह सन्तुष्ट रहेगा।

वल्लजी—जैसे आपकी इच्छा। (दुर्गासिंह से) आओ भाई मेरे साथ। (चलते चलते) यह जो (तंबू की ओर निर्देश कर) बड़ा सा तंबू है न, वही मेरा डेरा है। उसके पास ही एक और छोटा सा तंबू लगा है, उसमें तुम अपना डेरा जमा लो ! जब कभी मैं बुलाऊँ हाज़िर होजाया करना। समझे ! तुम्हारा नाम दुर्गासिंह ही है न ? (अपने आप) नाम भी गुणानुकूल ही है—शरीर दुर्गा (स्त्री) जैसा और हृदय सिंह जैसा।

(परदा गिरता है)

दूसरा दृश्य

(चित्तौड़ के पास की एक ओर सड़क। सड़क के पास ही एक मैदान है जिसमें चूड़ावतों का शिविर पड़ा है। वहां पर सैंकड़ों तंबू लगे हुए हैं। पास ही एक बासों का घना जंगल है। सालुम्बा सरदार और बंदा ठाकुर बातें करते करते आते हैं।)

सालुम्बा सरदार—ठाकुर जी, मालूम होता है कि शक्तावत अन्तल्ला के द्वार पर आक्रमण करेंगे। इसलिए हमें कोई ऐसा यत्न करना चाहिए कि उनसे पहले ही दुर्ग के अन्दर पहुंच जायें। हम लोगों ने भूल कर लंबा मार्ग लिया है। अब क्या किया जाय ?

बंदा ठाकुर—पड़ी कठिन समस्या उपस्थित हो गई है सरकार। सुना है दुर्ग का एक ही द्वार है और उसके चारों ओर की दीवारें बिलकुल सीधी और ऊँची हैं। यदि वहाँ तक पहुँचा भी गया, तो भी दीवारों को तोड़कर भीतर घुसना असंभव है।

सालुम्बा सरदार—मुझे यहां खड़े खड़े एक सूझ सूझी है। यहीं से बांसों की कुछ सीढ़ियां बना न ले चलें ? इनसे दीवारों को फांदने में बहुत सहायता मिलेगी।

बंदा ठाकुर—उपाय तो आपने बहुत अच्छा सोचा है। मैं अभी सैनिकों को आज्ञा देता हूँ। (सामने जाते हुए एक सैनिक से) हरिसिंह ! हरिसिंह !!

हरिसिंह—(आकर और सैनिक अभिवादन कर) क्या आज्ञा है ?

बंदा ठाकुर—हरिसिंह, इसी समय सबको हमारा आदेश पहुँचा दो कि पास के जंगल में से ऊँचे-ऊँचे और कड़े-कड़े बाँस काट कर कुछ सीढ़ियाँ तैयार करलें और उन्हें चलते समय साथ ले चलें।

रामसिंह—जो आज्ञा (जाता है।)

(एक राजपूत सैनिक किसी मनुष्य को पकड़ कर लाता है।)

सैनिक—(सरदार को अभिवादन कर) सरकार, यह मनुष्य हमारे डेरे के इरद गिरद चक्कर काट रहा था। कोई भेदिया मालूम होता है।

वह मनुष्य—(हाथ जोड़कर और गिड़गिड़ा कर) सरकार, मुझे कुछ मालूम नहीं कि भेदिया क्या होता है। मैं तो एक गडरिया हूँ और इस जंगल में ढोर चरा रहा हूँ।

बंदा ठाकुर—डरो नहीं। तुम रहते कहाँ हो ?

गडरिया—सरकार, पास ही, अन्तल्ला के पास।

सालुम्बा सरदार—पास ही ! अन्तल्ला यहाँ से कितनी दूर है ?

गडरिया—होगा कोई पाँच कोस।

बंदा ठाकुर—पाँच कोस ! केवल पाँच कोस ! हमने तो सुना है कि बहुत दूर है।

गडरिया—आप भी ठीक कहते हैं सरकार। जिस सड़क से आप जा रहे हैं इससे तो कोई पंद्रह कोस होगा। परन्तु यह तो जंगल का मार्ग है (हाथ से दिखाता है।) इससे वह केवल पाँच कोस है।

सालुम्बा सरदार—हमारे साथ चलकर रास्ता बताओ, हम तुम्हें बहुत इनाम देंगे।

गडरिया—आज नहीं, कल चलेंगे। तब तक मेरा भाई भी चित्तौड़ से लौट आयेगा।

बंदा ठाकुर—अच्छा कल सही। तब तक हम लोग भी सीढ़ियाँ तैयार कर लेंगे।

(दोनों जाते हैं।)

(रामसिंह और ज़ोरावरसिंह आते हैं)

रामसिंह—जोरावरसिंह, तुम अपने साथ मुझे भी क्यों ले डूबने को हो ?

ज़ोरावरसिंह—आप चाहें या न चाहें, मैं आपका साथ छोड़ने का नहीं। यदि घर से ही न चलते तो और बात थी परन्तु आधे रास्ते से लौटना क्या उचित है ?

रामसिंह—भैया, मैं कितनी वार तुम्हें समझाऊँ! घर से मैं अपनी इच्छा से थोड़े चला था। वहाँ से भी तुम्हारे जैसी जोरावर जोरू ने जोर से धकेल निकाला था। तुम सब लोग हाथ धोकर मेरे प्राणों के गाहक क्यों बने हो ?

ज़ोरावरसिंह—अपनी स्त्री से तुम्हारा प्रेम है क्या ?

रामसिंह—प्रेम न होता तो उसका कहना ही क्यों मानता !

ज़ोरावरसिंह— छिः छिः ! जिस स्त्री से इतना प्रेम करते हो, उसे ऐसा धोखा दे रहे हो !

रामसिंह—धोखा तो अवश्य है, पर इसमें लाभ उसी का है।

ज़ोरावरसिंह—उसका लाभ !

रामसिंह—हाँ, यदि रणक्षेत्र में मैं खेत आ गया, तो आजीवन वैधव्य-यातना किसे भोगनी पड़ेगी ?

ज़ोरावरसिंह—(ज़रा आवेश में) क्या कह रहे हैं आप ! युद्ध-प्रस्थान के समय राजपूत वीरों को अपनी स्त्रियों के वैधव्य का कभी ध्यानमात्र भी हुआ है ? कभी नहीं, क्योंकि वे जानते हैं कि कृपाण वा चिता से वे सतीत्व की रक्षा करना जानती हैं। सरदार जी, आप अपनी स्त्री से अन्याय कर रहे हैं। वह भी राजपूतनी है।

रामसिंह—तुम भी निरे बाल की खाल ......अच्छा भाई, रहने दो इस माथापच्ची को। तुम जैसा कहोगे वैसा करूंगा। अब कभी लौटने का नाम भी न लूंगा। चलो अब शिविर को चलें।

ज़ोरावरसिंह—मुझे आप पर पूरा विश्वास है। आज से आपका पीछा छोड़ दिया। (पास के बांसों के बन को देख कर) अभी मैंने कुछ काम करना है। आप चलें, मैं भी पीछे पीछे आता हूँ। (रामसिंह जाता है।) मैं भी बाँस की एक सीढ़ी न बना लूँ ! समय पर काम आयेगी। (दुर्गासिंह आता है और दबे पाँव आकर उसके पीछे खड़ा हो जाता है। और कुछ देर ठहर कर ज़रा छींक देता है।)

ज़ोरावरसिंह—क्या आप गये नहीं अब तक ? अब तो आप मेरा पीछा नहीं छोड़ते। (पीछे देखता है। सहसा उठकर विस्मय से) दुर्गा ! तुम कब ?

दुर्गा—(दबी आवाज़ से) धीरे से, कोई सुन न ले।

ज़ोरावरसिंह—कोई भय नहीं, यहाँ कोई नहीं।

दुर्गा—गौरी, यहाँ क्या कर रही हो ?

गौरी—सीढ़ी बनाने चली हूँ। आज सरदार ने आदेश दिया है कि कुछ सीढ़ियाँ बनाकर साथ ले चलो कि दीवारों को फाँदने में काम आयेंगी।

दुर्गा—दुर्ग की दीवारें इतनी छोटी हैं क्या?

गौरी—वे तो सुना है बहुत ऊँची हैं, पर इसे अपने स्वामी महाराज के लिये तैयार कर रही हूं। जब वे ऊपर चढ़ जायेंगे तो नीचे से इसे हटा लूंगी कि वे भाग न सकें।

दुर्गा—क्या अब भी वे भागना चाहते हैं?

गौरी—भागने के लिये कई बार उन्होंने यत्न किये पर मैंने कोई सफल नहीं होने दिया। तुम्हारे आने से पहले वे यहीं थे और इसी बात पर हमारा विवाद हो रहा था। दुर्गा, मैं कई बार सोचती हूं इस विवाहित जीवन से तो अविवाहित ही रहती तो अच्छा होता।

दुर्गा—छोड़ो इस बात को गौरी। जो काम तुम सच्ची राजपूतनी की तरह कर रही हो, उसे करती जाओ, ईश्वर फल देगा।

गौरी—तुम अपनी सुनाओ दुर्गा, क्या प्रेमधन से समागम भी हुआ कि नहीं?

दुर्गा—(हंस कर) रातदिन उन्हीं के पास तो रहती हूं।

गौरी—सच!

दुर्गा—हाँ, सच। पहले तो उन्होंने मुझे बिल्कुल निराश ही कर दिया था, परन्तु फिर कुछ सोच कर मुझे सेना में भर्ती कर लिया। अब तो मुझ पर इतने रीझ गये हैं कि

अलग होने का नाम भी नहीं लेते। इस समय भी बिना उन्हें बताये ही निकली हूं। सुना तुम्हारा डेरा पास ही है, इसलिये सोचा एक बार मिल लूं, फिर मिलना हो अथवा न हो।

गौरी—तुम्हारे भेद का उन्हें पता तो नहीं लगा ?

दुर्गा—अभी तक तो छिपाये बैठी हूं, परन्तु कब तक छिपा सकूंगी, हर समय पास ही रहना होता है।

गौरी—मैं तुम्हारे भाग्य को सदा सराहती रहती हूं। इस प्रकार के देशसेवक पति का सहवास किसी ही ललना के भाग्य में होता है।

दुर्गा—बहिन, यह सब कुछ तुम्हारे उपकार का फल है। अच्छा, तुम लोग कब कूच करने वाले हो ?

गौरी—हम लोग तो अन्तल्ला का रास्ता ही भूल गये थे, परन्तु आज ही एक गडरिये से पता चला है कि इस जंगल के मार्ग से वह यहां से केवल पांच कोस है। हम कल प्रातः प्रस्थान करेंगे।

दुर्गा—(विस्मय से) केवल पांच कोस !

गौरी—हाँ।

दुर्गा (घबराई सी जल्दी से उठकर) गौरी, मुझे बहुत देर हो गई है, अब जाना ही चाहिए।

गौरी—तुम्हें छोड़ने को जी तो नही चाहता, शायद यही अंतिम भेंट हो। अच्छा जाओ। (दोनों कुछ मार्ग तक इकट्ठी जाती हैं। गौरी ठहर जाती है और दुर्गा उसे गाढ़ आलिंगन कर चली जाती है।)

दुर्गासिंह—(घबराया सा) फिर तो अनर्थ हो गया, महान् अनर्थ हो गया। चूड़ावतों का दल दुर्ग के पास तक पहुँच गया है और शक्तावत वहीं पड़े होंगे। कदाचित् वे.......अवश्य मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। अब मुझे भाग कर वहां पहुँचना चाहिए। (मनुष्य से) तुम क्या यहीं रहते हो ?

मनुष्य—मैं चूड़ावत दल का सैनिक हूँ।

दुर्गासिंह—क्या तुम ज़ोरावरसिंह को जानते हो ?

सैनिक—हाँ जानता क्यों नहीं। मेरे पास के तम्बू में तो वह रहता है।

दुर्गासिंह—(मन में) यहाँ तक आ गया हूँ तो गौरी से भी मिल लूं। (सैनिक से) आप ज़रा उससे मेरा सन्देश दे दें कि दुर्गासिंह तुम्हारी प्रतीक्षा में खड़ा है।

सैनिक—वह कहाँ आ सकेगा ! आज ही हमने चलना है।

दुर्गासिंह—धिक्कार है मुझे ! मैं यहां व्यर्थ समय खो रहा हूँ। मुझे अभी चलना........

सैनिक—देखो वही तो खड़ा है सामने। (ऊंची आवाज़ से) अरे हो ज़ोरावर ! अरे भाई, तनिक इधर आओ।

(ज़ोरावर आता है, सैनिक जाता है।)

ज़ोरावर—(आश्चर्य से) दुर्गा ! तुम यहां ! और इस समय ! उनसे कुछ अनबन तो नहीं हो गई ?

दुर्गा—(असली बात छिपाकर) बात यह है गौरी कि मैं तुमसे मिलने को सदा छटपटाती रहती हूँ। आज भी देखा कि

(सीढ़ी पर चढ़ने लगते हैं। ऊपर से तीर चलते हैं, पर वे उनक
न कर चढ़ते ही जाते हैं। अन्त में दीवार पर पहुँच जाते
और वहां पर मुग़ल सिपाहियों से युद्ध करते हैं। कई
सिपाही मारे जाते हैं और कई भाग जाते हैं।
नीचे से राजपूत जयध्वनि करते हैं। इतने
में एक तीर आकर उनके हृदय में
लगता है। वे पछाड़ खाकर
दीवार से गिरते हैं।
बन्दा ठाकुर जो
नीचे से
सीढ़ी
पर चढ़ रहा है,
उन्हें बीच में ही थाम लेता है
और उन्हें मरा जान कर उनकी लाश को एक कपड़े में
बांधकर पीठ पर लाद लेता है।)

रामसिंह—(आँखों में आंसू लाकर, चढ़ते चढ़ते) विजय-लक्ष्य पर जब हम पहुँचने को ही थे कि सरदार हमें छोड़ गये। फिर भी विजय उन्हीं की है। (वह लाश उठाये ही दीवार पर पहुँच जाता है। सैनिकों से) वीरो, एकदम धावा बोल दो। सरदार ने अपना बलिदान कर हमारा मार्ग साफ कर दिया है। (ज़ोर से) थोड़ा और बल लगाने की आवश्यकता है। शत्रुओं के पैर उखड़ चुके हैं। विजय तुम्हारे सामने है। बोलो—'सालुम्बा सरदार की जय।'

सरदार—इस किले की फ़ौज का सिपहसलार।

राणा—(व्यंग्य से) जैसी फ़ौज वैसे सिपहसलार! सरदार जी, कायरों की तरह छिपकर तीर चलाते आपको लज्जा नहीं आई?

सिपहसलार—मैंने तीर इस पर नहीं चलाया था, आप पर चलाया था। यह बेचारा तो यूँ ही बीच में आगया और निशाना बन गया। मेवाड़ के दो सतून तो गिर ही चुके थे। चाहा था तीसरे को भी गिराना।

राणा—यह कहते तुम्हें लज्जा नहीं आती? दो सतून क्या तुमने गिराये हैं?

सिपहसलार—किसी ने गिराये हों। मैंने या मेरे सिपाहियों ने। बात एक ही है। राणा साहिब आपको भी इस जीत का इतना गर्व क्यों है! आपने भी तो एक तीर तक नहीं चलाया। इन्हीं बेचारों की (सैनिकों की ओर इशारा कर) लाशों की सीढ़ियाँ बना कर जस और नामवरी के ऊँचे शिखर पर पहुँचना चाहते हो? दुनियाँ की यही चाल है—बोते और हैं, काटते और हैं!

योध—तुम वन्दी हो, वन्दी का आचरण करो।

(सिपहसलार व्यंग्यसहित स्मित के साथ चुप हो जाता है।)

राणा—इसे डेरे में ले चलो। वहीं इसका न्याय होगा।

(परदा गिरता है।)

पटाक्षेप

राणा—क्यों ?

चन्दा—सरकार, रामसिंह जो भाग्यवश जीवित है; वही स्वयं अपने मुख से सब कुछ बतायेगा।

राणा—चंदा जी, मेवाड़ को जितना गर्व अपने पुत्रों का है उससे किसी प्रकार भी कम अपनी पुत्रियों का नहीं है। यदि सिंहनियां न हों तो सिंह कहाँ से उत्पन्न हों!

(इतने में एक तीर आकर दुर्गा के हृदय में लगता है। वह पछाड़ खाकर वल्लजी को लिये उसके ऊपर गिर जाती है। सब के सब इधर उधर देखने लगते हैं।)

राणा—(क्रोध से) यह किस नीच का काम है ? पकड़ लाओ उसे।

दुर्गा—(हंसते हुए चेहरे के साथ) मैं यही चाहती थी राणा जी। मेरी इच्छा पूर्ण हुई है। अन्तिम निवेदन यही है कि हम दोनों को एक ही चि·······(प्राण दे देती है।)

राणा—तुम सती-शिरोमणि हो देवी। तुम्हारा सहवास अब सती पद्मिनी और कर्णवती के साथ स्वर्ग में होगा।

(दो सैनिक एक मुग़ल सरदार को पकड़े आते हैं। वेषभूषा से वह सेनाध्यक्ष मालूम होता है।)

राणा—कौन है यह ?

सैनिक—यही है जिसने इसके (दुर्गा की ओर इशारा कर) प्राण लिये हैं।

राणा—तुम कौन हो ?

सरदार—इस किले की फ़ौज का सिपहसलार।

राणा—(व्यंग्य से) जैसी फ़ौज वैसे सिपहसलार ! सरदार जी, कायरों की तरह छिपकर तीर चलाते आपको लज्जा नहीं आई ?

सिपहसलार—मैंने तीर इस पर नहीं चलाया था, आप पर चलाया था। यह वेचारा तो यूँ ही बीच में आगया और निशाना वन गया। मेवाड़ के दो सतून तो गिर ही चुके थे। चाहा था तीसरे को भी गिराना।

राणा—यह कहते तुम्हें लज्जा नहीं आती ? दो सतून क्या तुमने गिराये हैं ?

सिपहसलार—किसी ने गिराये हों। मैंने या मेरे सिपाहियों ने। बात एक ही है। राणा साहिब आपको भी इस जीत का इतना गर्व क्यों है ! आपने भी तो एक तीर तक नहीं चलाया। इन्हीं वेचारों की (सैनिकों की ओर इशारा कर) लाशों की सीढ़ियाँ वना कर जस और नामवरी के ऊँचे शिखर पर पहुँचना चाहते हो ? दुनियाँ की यही चाल है—वोते और हैं, काटते और हैं !

योध—तुम वन्दी हो, वन्दी का आचरण करो।

(सिपहसलार व्यंग्यसहित स्मित के साथ चुप हो जाता है।)

राणा—इसे डेरे में ले चलो। वहीं इसका न्याय होगा।

(परदा गिरता है।)

पटाक्षेप

—:&:—